प्रधान विक्रेता:-
..देव विद्यालंकार
..ी पब्लिकेशन्स
..न रोड नई दिल्ली

अपनी बीबी रामोदेवी को
जिसकी मदद और दिलेरी के बिना
मेरे लिए
बोस बाबू और मादरे वतन
की
यह खिदमत करना
मुमकिन न था

चन्द सतरें

बहुत से लोगों को यह जान कर ताज्जुब होगा कि सुभाषचन्द्र बोस हिन्दुस्तान से बर्लिन काबुल के रास्ते गये थे। काबुल में वह मेरे घर में 'हिन्दू गुज़र में' रहे। जिस वक्त बोस बाबू बर्लिन के लिए रवाना हुए, मैंने उनसे यह प्रार्थना की कि बर्लिन या मास्को जाकर आप हिन्दुस्तान से गायब होने और बर्लिन पहुंचने के सारे हालात एक किताबी शक्ल में लिख कर मेरे पास भेजने की कृपा करें। उन्होंने उस वक्त कहा था कि अगर लिखने का वक्त मिला, तो मैं जरूर लिखकर भेज दूंगा। लेकिन मेरी गिरफ्तारी तक तो उनकी कोई चीज मेरे पास नहीं आई।

मैं पेशावर का रहने वाला हूं। मेरा जन्म एक अच्छे खानदान में हुआ था। बचपन ही से मेरे खयालात सियासी हो गये थे। उन दिनों मैं सोचा करता था कि कितनी बेतरतीबी से दुनिया में दौलत का बंटवारा हुआ है। एक ओर कितने ही आदमी इतने गरीब होते हैं कि सारे दिन मेहनत करके भी अपना और अपने बालबच्चों का पेट नहीं भर पाते और दूसरी ओर कितने ही इतने अमीर होते हैं कि सब तरह के ऐश व आराम का सब सामान उनके लिए मौजूद रहता है। हर मजहब के लोगों का यह खयाल होता है कि दौलत को तकसीम करने वाला परमात्मा है। परमात्मा ने जितना जिसके नसीब में लिख दिया है उतना ही उसको मिलता है, ज्यादा नहीं। मेरी समझ में यह नहीं आता था कि परमात्मा किस तरह बेइन्साफी कर सकता है। ज्यादा तालीम न पाने की वजह से मैं ज्यादा सोच भी नहीं सकता था।

१९२८ या १९२९ में पेशावर में कांग्रेस की एक शाखा कायम हुई। उद्घाटन की रस्म में मैं भी शरीक हुआ। कांग्रेस का घोषणा-पत्र

जमातें गैर-कानूनी करार दी गईं। दो महीने के बाद हम पर मुकदमे चलाये गये। मुझे दो साल सख्त कैद की सजा मिली।

हमारा कारबार अफगानिस्तान के लोगों से था। कैद होने से पहले ही मैंने काबुल जाने के लिए पासपोर्ट ले लिया था। जेल से छूटने के बाद मैंने फिर किसी न किसी तरीके से अफगानिस्तान जाने के लिए पासपोर्ट ले लिया और काबुल चला गया। वहां पहुंचने के सात महीने बाद मुझे काबुल में दूकान खोलने के लिए चाचा और भाई साहब से सलाह करने के लिए पेशावर आना पड़ा। दुबारा काबुल जाने के लिए सी० आई० डी० ने बड़ी मुश्किल से पासपोर्ट दिया। खैर, मैं वहां गया और १९३२ में मेरे चाचा साहब ने अफगान सरकार से दूकान खोलने की इजाजत ले ली। नये हिन्दुस्तानियों को अपने नाम से कारबार करने की मनाही थी इसलिए मुझे अपने नाम से इजाजत न मिली। सन् १९३८ या १९३९ में अफगान सरकार कुछ शर्तों पर हिन्दुस्तानियों को व्यापार करने की इजाजत देने लगी। कुछ शर्तों के सख्त होने की वजह से नये व्यापारियों को व्यापार करने की हिम्मत न होती थी।

मई १९४२ तक हमारा कारबार चलता रहा। इस अर्से में कभी मैं पेशावर आ जाता था और कभी चाचा व भाई साहब काबुल चले जाते थे। लेकिन ज्यादा दिनों मैं काबुल में ही रहा।

बोस बाबू काबुल में १९४१ के जनवरी महीने में पहुंचे। उनके काबुल से चले जाने के साल भर बाद मैं काबुल में बैठा हुआ एक दिन बोस बाबू के साथी के साथ अखबार पढ़ रहा था। एक खबर बहुत ही छोटे हरफों में छपी हुई थी। उसे पढ़ने से मालूम हुआ कि एक आदमी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है। उस वक्त यह तो हम समझ नहीं सके कि उसकी गिरफ्तारी किस तरह हुई। मगर हमें यह यकीन होगया कि अब आगे खैर नहीं।

२५ मई, १९४२ को मुझे अफगान सरकार की तरफ से नोटिस मिला कि ४८ घंटे में अफगानिस्तान की हद से बाहर निकल जाओ। मैंने दरख्वास्त की कि मैं १२ साल से तिजारत करता हूं और हर साल सरकार को लाखों रुपये के सामान पर आयात-निर्यात कर देता हूं। ४८ घंटे में मैं अपना सारा सामान नहीं बेच सकूंगा और न लोगों से अपना कर्जा वसूल कर सकूंगा। मेरी दरख्वास्त का अफगान सरकार पर कोई असर न हुआ। २४ घंटे बीतने पर मैं गिरफ्तार कर लिया गया और २७ मई की रात के १२ बजे लारी से जलालाबाद भेज दिया। वहां सुबह मुझे तंग व अंधेरी कोठरी मे बन्द कर दिया गया और उसीमें दो दिन तक रहा। इन दो दिनों मुझे खाने को नहीं मिला। कोठरी ऐसी थी कि उसमें यह पता ही नही लगता था कि कब दिन होता है और कब रात होती है। मैं खुद हैरान हूं कि उस कोठरी में मै जिन्दा कैसे रहा। जब मैं बाहर लाया गया, तो मुझे ऐसा लगा मानो कब्र से बाहर लाया गया हूं। मेरा जो सामान दूकान और घर में था, उसमें से मुझे केवल एक कालीन लाने की इजाजत दी गई। लेकिन, जब थाने पर आया तो वह कालीन भी पुलिस ने ले लिया। नकद रुपये जलालाबाद की पुलिस ने लेलिये। बाद मे पहली जून को मैं अफगानिस्तान की हद से बाहर कर दिया गया।

पेशावर पहूंचते ही मैं गिरफ्तार कर लिया गया। चार महीने तक मुझे पुलिस की हिरासत में रखा गया। उन दिनों मुझे सात थानों की खाक छाननी पड़ी। बड़ी मुश्किल से पुलिस से छुट्टी मिली और मैं जंग के आखिर तक के लिए जेल भेज दिया गया।

सितम्बर १९४३ तक मैं अपने सूबे में ही रहा। बाद में हिन्दुस्तान की सरकार का कैदी बनाया जाकर पंजाब सरकार के



हवाले कर दिया गया। कुल मिलाकर पेशावर, लाहौर, डेरागाजीखां, रावलपिण्डी आदि छः जेलों की हवा खानी पड़ी। मेरी इस तीन-चार साल से ज्यादा की नजरबन्दी के दौरान में, मुझे ऐसे कई सियासी साथियों ने, जब मैं सूबा पंजाब में हकूमत हिन्द के हुक्म से तब्दील होकर आया, तो बड़ी हैरानी से देखा। दर असल मेरा पंजाब में तब्दील होकर आना ही उनके लिए अजीब था। वे जानते थे कि अपने सूबे से जो भी शख्स तब्दील होकर किसी दूसरे सूबे में लाया जाता है, वह गवर्नमेंट की नजरों में काफी खतरनाक होता है। इसलिए मुझे और मेरे एक साथी को जो कि मेरे तब्दील होने के दो दिन बाद ही लाया गया था, बहुत ही खतरनाक समझते थे। हमारा ज्यादा खतरनाक होना उनकी नजरों में इसलिए भी जरूरी था कि हम सेन्ट्रल गवर्नमेंट के कैदी थे और साथ ही लाहौर के लाल किले का कोर्स भी पास करके आए थे। कई साहब हमारी गिरफ्तारी की वजह मालूम करने के लिए इधर-उधर सरगोशियां करते नजर आते थे। मेरी काबुल (अफगानिस्तान) में हुई गिरफ्तारी को सुनकर उनको और भी अचम्भा होता था। जिस वक्त भी उनको बातों में मेरी गिरफ्तारी के मुतल्लिक असली वजह की जरा-सी भनक पड़ती थी, तो उनकी हमदर्दी पहले से भी ज्यादा हो जाती थी। वे पहले हमसे काफी हमदर्दी करते थे; पर गिरफ्तारी की असली हकीकत जानने के बाद वे हमें अपनी आंखों पर बिठाते थे। मेरी और मेरे साथी की जो खातिर और इज्जत पंजाब के सियासी रहनुमाओं ने, जो हमारे साथ जेलों में थे, की है, उसके शुक्रिया के लिए मेरे पास लफ्ज नहीं हैं। उनकी इस महरबानियों और शफकतों का इस कदर वजन हम पर पड़ा हुआ है कि उसका उठाना, खासकर मेरे लिए तो, बहुत ही

मुश्किल है। सिवाय इसके कि मैं उनका नफी शुक्रिया ही अदा करूं, और कर ही क्या सकता हूं ?

कई भाइयों ने ख्वाहिश जाहिर की कि मै उनको सुभाषचन्द्र बोस के हिन्दुस्तान से गायब होने और उनके बाद के हालात मुफस्सिल तौर पर बयान करूं, मगर मेरे लिए यह काम बहुत ही मुश्किल था कि हर एक साहब के सामने इस किस्से को बयान करता फिरूं। हां, अगर कोई भाई ज्यादा मजबूर करता, तो मैं इतना ही कह कर अपनी जान छुड़ा लेता था कि "सुभाष बाबू काबुल के रास्ते बर्लिन गए हैं।" एक वजह न सुनाने की यह भी थी कि मेरे लाहौर जेल में पहुंचते ही मुझे मेरे कई महरबानों ने यह भी समझा दिया था कि यहां पर हमारे साथ ऐसे भी लोग रहते हैं, जिनको शक की नजरों से देखा जाता है। उनसे खतरे का भी अन्देशा है। यहां पर ऐसी-वैसी बात करनी ही नहीं चाहिए, जिससे बाद में नुकसान उठाना पड़े।

दरअसल वह वक्त ऐसे किसी किस्से को सुनाने का था भी नहीं। उन्हीं दिनों में यह खयाल भी पैदा हुआ था कि मौका आने पर इस किस्से को दुनिया के सामने किताबी शक्ल में पेश करूं।

जो इतना भी सुनता था कि बोस बाबू काबुल के रास्ते से बर्लिन गए हैं, वह बहुत ही हैरान होता था। ऐसा कारनामा दुनिया का एक अजूबा खयाल किया जाता रहा। क्यों न होता ? एक हिन्दुस्तानी का हिन्दुस्तान की सरहद से निकल कर खुफिया तौर पर, बगैर किसी पासपोर्ट के आजाद कबायल मे होते हुए, रास्ते की सख्तियों और मुसीबतों को उठाकर काबुल पहुंचकर वहां से बर्लिन जाना अजीब नहीं तो क्या है ! खासकर हिन्दुस्तान के चोटी के लीडर और इण्डियन नेशनल कांग्रेस के साबिक सदर सुभाष बाबू का इस तरह

गायब होकर इस दुश्वार उजाड़ रास्तों से होते हुए, हर किस्म की मुसीबतों को बरदाश्त करते हुए और ऐसी हुकूमत के होते हुए, जो कि बड़ी मुनजान और मजबूत है, जिसके बाजू हिन्दुस्तान से बाहर भी दूर-दूर तक फैले हुए हैं, जिसका खुफिया पुलिस का महकमा हर साल करोड़ों रुपया खर्च कर रहा है, और जिसकी मैशीनरी इतनी मुकम्मिल और मजबूत है, इस तरह गायब होना, फिर अफगानिस्तान के रास्ते बर्लिन जाना मेरी नजरों में दुनिया का आठवां अजूबा समझा जाना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि बोस बाबू ने कमाल कर दिखाया, मगर उनको अपने साथ काबुल पहुंचाने वाले ने हद से ज्यादा कमाल किया। जिसकी बगैर दाद दिये रहा नहीं जा सकता।

जब मैं रावलपिण्डी सेंट्रल जेल में तब्दील किया गया, तब इत्तफाक से वहां कोई और सियासी कैदी न था। मुझे १४ नं० वार्ड में अकेला रखा गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब भी इत्तफाक से सख्त और खुश्क तबियत के मिल गए। गवर्नमेंट पंजाब ने जो रूल्स और रेगुलेशन्स सिक्यूरिटी कैदियों के लिए बनाए थे, उन पर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बहादुर का चलना जरूरी न था; बल्कि वे खुद ही रूल्स और रेगुलेशन्स बनाने की मैशीन थे। मुझे बिल्कुल तन्हाई की कैद दे दी गई और दरवाजे पर एक स्पेशल सिपाही तैनात कर दिया गया। इस दौराने असीरी में मैंने पंजाब में चार-पांच जेल देखे; मगर वैसा रवैया किसी भी जेलवालों का कैदियों के साथ देखने में नहीं आया।

चन्द दिनों तो मेरा मन इस तन्हाई में बहुत घबराया; मगर जल्दी ही वह घबराहट दूर हो गई। जो नजरबन्द लाहौर का शाही किला और पंजाब का काला पानी—डेरागाजीखां जेल—देख आया

हो, उसके लिए रावलपिण्डी जेल वार्ड नं० १४ में रहना क्या मुश्किल था। चन्द दिन की परेशानी के बाद वह खयाल, जो मेरे दिल में चन्द मुद्दत से पहले कायम हो चुका था, ताजा होगया। मैंने बोस बाबू के बर्लिन जाने की दिलचस्प कहानी लिखने का फैसला किया। इसमें मैंने जो वक्त इस्तेमाल किया, वह बहुत आराम से कट गया।

मेरा असली मकसद इस कहानी को पब्लिक में पेश करने का सिर्फ यह है कि वो हालात जिसको कि पब्लिक जानने की जबर्दस्त ख्वाहिश रखती है, उसकी उसको वाकफियत हो जाय। मैंने अपनी तरफ से जहां तक हो सका और जितना मुझे याद रहा, वही तमाम अल्फाज इस्तेमाल किये हैं, जिनको मैं और बोस बाबू इस्तेमाल में लाते थे। अगरचे इस किस्से को गुजरे चार साल से ज्यादा अरसा हो गया है, मगर मैंने अपनी ओर से तारीखें भी सही देने की कोशिश की है। अगर कहीं कोई गलती होगई हो, तो मैं माफी का ख्वाहिस्तगार हूं। इसमें और भी कई साहबान ने अपनी-अपनी जगह पर बड़ी खूबी से पार्ट अदा किया है। उनसे इजाजत न ले सकने की वजह से उनके नाम परदे में रखना मेरे लिए जरूरी है। इसलिए इसमें मैंने अमूमन सब नाम बनावटी ही दिये हैं।

आखिर में मैं यह भी अर्ज कर देना चाहता हूं कि मैंने यह सब किसी पार्टी या बशर का दिल दुखाने की वजह से नहीं लिखा है। बल्कि जो भी असल हालात थे और उस वक्त के हालात देखकर जो राय कायम की थी, उनको कलमबन्द करना मेरे लिए जरूरी था। अगर मेरी तहरीर से किसी भाई को कुछ सदमा पहुंचे, तो उसके लिए मैं माफी चाहता हूं।

× × ×

यह कहानी मैंने ७ मई १९४५ को पूरी करके ऊपर की चन्द सतरें भी तभी लिख ली थीं। लेकिन, तब मेरा इरादा उसको शाया करने या कराने का न था। लेकिन, जेल से रिहा होने पर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के पेशावर के नामानिगार ने इसको शाया कराने के लिए मुझ पर जोर दिया। सारा किस्सा सिलसिलेवार 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में छप चुका है। शुरू में इरादा यह था कि इसको 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के साथ-साथ 'हिन्दुस्तान' नई दिल्ली, 'लीडर' और 'भारत' इलाहाबाद और 'सर्चलाइट' पटना में ही शाया कराया जाय। बाद में लातादाद अखबारों ने इसको छापने की ख्वाहिश जाहिर की और इजाजत भी मांगी। कुछ ने बिना इजाजत लिये गैर कानूनी तरीके से छापना भी शुरू कर दिया। इस पर मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक की सलाह मान कर उनको इसे छापने की इजाजत दे दी और उसके लिए एक खास रकम मुकर्रिर कर दी। इस रकम का आधा हिस्सा आजाद हिन्द फौज की पैरवी के फण्ड में दिया जायगा। इनको किताबी शक्ल में छापने का हक मेरे पास ही था। अपने मुल्क की सभी जबानों में इसे शाया करने के लिए मेरे पास सैकड़ों पत्र और तार आये हैं। उन पर गौर करके करीब-करीब हर जबान में इसे किताब की शक्ल में छापने का इन्तजाम हो गया है।

इन किताबों पर उनके शाया करने वाले, मुझे पुस्तक की कीमत पर ३० फी सदी रायल्टी दे रहे हैं। इसमें से मैंने पहिले दो हजार के एडीशन पर ढाई फी सदी 'आजाद हिन्द फौज पैरवी फण्ड' में और दस फी सदी अपने सूबे के गान्धी खां अब्दुल गफ्फार खां को दे देने का फैसला किया है। बाद के एडीशनों पर आजाद हिन्द फौज के पैरवी फण्ड में ढाई फीसदी और सरहदी गान्धी को पांच फी सदी दिया जायगा।

यहां मैं यह भी लिख दूं कि जब मैं डेरा-गाजी खां की जेल में था, तो हिन्दुस्तान की सरकार ने मुझे पता दिया कि काबुल में मेरा जो सामान रह गया था, उसे अफगान सरकार ने नीलाम करा दिया है। मेरा माल एक लाख से ऊपर का था; लेकिन मालूम हुआ कि अफगान सरकार ने कुल मिला कर उसे दस हजार में ही नीलाम कर डाला। फैहरिस्त को देखने से मालूम हुआ कि आधे माल का उसमें कहीं जिक्र ही न था। उसे देख कर मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। काबुल में मुझे जो वसूली करनी थी, उसका भी कहीं जिक्र न था। अभी तक मुझे वे १० हजार रुपये भी नहीं मिले हैं। इसके अलावा जेल की जिन्दगी में मेरा वजन ३२ पौण्ड कम हो गया। लाहौर के मेयो अस्पताल में हुए संगीन आपरेशन में मेरी एक किडनी भी निकाल दी गई। लेकिन, मुझे इतनी तसल्ली है कि मैं अपने एक अजीमुश्शान लीडर और वतन की इस तरह कुछ खिदमत कर सका।

अखीर में मैं 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के मैनेजिंग एडीटर श्री देवदास जी गान्धी के लिए शुक्रिया जाहिर किये बिना नहीं रह सकता, जिनकी रहनुमाई से मैं यह कहानी अपने देशभाइयों तक पहुंचाने में इस तरह कामयाब हुआ। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दुस्तान' के उन तमाम ऐडीटरों का भी मैं शुक्र गुजार हूं, जिन्होंने इसको इतनी अच्छी शक्ल देने में कुछ भी उठा नहीं रखा।

पंजाब होटल, दिल्ली
२ दिसम्बर १९४६

—उत्तमचन्द मलहोत्रा

उत्तम चंद मिलहोत्रा

विषय-सूची

१.	काबुल में	१
२.	पहली मुलाकात	१५
३.	सराय की अंधेरी कोठरी	२१
४.	पुलिस का भूत	२[illegible]
५.	बीवी की तसल्ली	३४
६.	कलकत्ता से पेशावर	३९
७.	सरहद के पार	४[illegible]
८.	निराशा का दौर	५०
९.	आशा की रेखा	५३
१०.	एक नई मुसीबत	५९
११.	रूस का संकोच	६९
१२.	प्रोफेसर जियाउद्दीन	७४
१३.	खुफिया तैयारी	८२
१४.	नई परेशानी	९१
१५.	भारी उलझन	९७
१६.	बर्लिन की तैयारी	१०५
१७.	मिस्टर करोटना के रूप में	१११
१८.	पूछ-ताछ	११४

नेताजी

—जियाउद्दीन के रूप में—



ने ता जी

जियाउद्दीन के रूप में—

: १ :

काबुल में

सरदी का मौसम, फरवरी का महीना और काबुल जैसी जगह; उस पर आसमान से छोटे-छोटे रुई के टुकड़ों की तरह बर्फ का गिरना—एक अजब नजारा था। पहाड़ों, सड़कों, मकानों की छतों पर, जहां-कहीं भी आंख उठाकर देखो सफेदी ही सफेदी नजर आती थी। काफी सरदी की वजह से लोग अपने घरों से कम निकलते थे और बाजार में गैरमामूली खामोशी थी।

मैं अपनी दूकान पर बैठा बर्फ के गिरने का नजारा देख रहा था। रेडियो बज रहा था। इतने में 'इंडियन ट्रेड एजेंसी' से चपरासी अखबारों का एक बण्डल लाया। अखबारों का बण्डल देखकर मेरे जिस्म में एक लहर दौड़ गई। रेडियो पर खबरें सुन लेने पर भी जबतक अखबार नहीं पढ़ लेता, मेरे दिल को तसल्ली नहीं होती थी। सुभाष बोस के हिन्दुस्तान से गायब होजाने से अखबार पढ़ने की ख्वाहिश और भी बढ़ गई थी। उसी दिन सवेरे एक खबर ब्राडकास्ट हुई थी कि बोस बाबू हरिद्वार के पास साधु के भेस में पकड़े गये। लेकिन

दोपहर के ब्राडकास्ट में इस खबर को गलत बताते हुए कहा गया था कि पकड़ा जाने वाला साधु सुभाष बाबू नहीं, कोई और था।

अखबारों पर नजर दौड़ाता-दौड़ाता मैं सरदार सरदूलसिंह कवीशर के एक बयान को पढ़ने के लिए रुका, जो उन्होंने अखबार के एक नुमाइन्दे को दिया था। इस बयान में उन्होंने कहा था कि 'सुभाष बाबू के गायब होने से पहले मैं उनसे मिला था और उन दिनों वह दुनिया से किनारा कर लेने का इरादा कर रहे थे।' सरदार सरदूलसिंह ने अपने बयान में यह भी कहा था कि 'मेरा खयाल है कि वह साधु बनकर दक्खिनी हिन्दुस्तान चले गये हैं।' इसके खिलाफ मेरा अपना खयाल था कि बोस बाबू किसी जापानी के साथ इन्तजाम करके जापान चले गये हों।

इसी तरह मैं अखबारों को उलट-पलट रहा था कि एक अजनबी मेरी दूकान में आया और उसने आते ही अस्सलामालेकुम करने के बाद पश्तो में मुझसे बात-चीत की। वह खाकी पेशावरी सलवार, खाकी कमीज, पोस्तीन की वास्कट और उसके ऊपर पठानी ढंग की बन्द गले की वास्कट पहने हुए था। सिर पर मामूली पेशावरी कुल्ले पर खाकी मलमल का पटका था। पांव में गरम जुराबें और पेशावरी चप्पलें थीं। आजाद कबीले का आदमी मालूम होता था। सबसे ज्यादा अचम्भा तो चप्पलों को देखकर हुआ। ऐसी सर्दी में, जब कि सड़क पर दो-दो फुट बर्फ पड़ी हो, सिर्फ चप्पलों का पहनना कुछ अजब-सा मालूम होता था।

'फरमाइए ?" मैंने आने वाले से पूछा।

'क्या आपका नाम उत्तमचन्द है ?" उसने पश्तो में मुझसे सवाल किया।

उसके इस तरह सवाल करने ने मुझे चौंका दिया और मैंने पश्तो में ही जवाब दिया—"हां, मेरा ही नाम उत्तमचन्द है।"

इतना सुनते ही उसके होठों पर मुस्कराहट आगई।

मैंने दुबारा पूछा— "आपकी क्या खिदमत है ?"

उसने मेरे सवाल का कोई जवाब नहीं दिया और वह दूकान के चारों तरफ देखने लगा कि कहीं उसकी बातचीत कोई सुन तो नहीं रहा। मेरी दूकान पर चौदह-पन्द्रह साल का एक लड़का काम करता था। उसका नाम अमरनाथ था। मैंने उसे कुर्सी लाने के लिए कहा। वह कुर्सी पर बैठ गया, मगर खामोश रहा।

कुछ मिनट इन्तजार में बीते। मैंने अजनबी से कहा—"आपको जो कुछ कहना है बिना झिझक के कह दीजिए। आप चुप क्यों हैं ? बगैर किसी मतलब के तो आप आये नहीं हैं।"

उसकी आंखें दूकान के चारों तरफ देखने लगीं और अमरनाथ पर आकर अटक गईं। मैं फौरन समझ गया कि अमरनाथ का होना ही रुकावट है। मैंने उसे चाय लाने के लिए भेज दिया।

अमरनाथ के जाते ही उसके चेहरे पर रौनक आगई और वह पश्तो में कहने लगा—"मैं एक हिन्दुस्तानी हूं और यहां पर सियासी मकसद से आया हूं। अब कुछ मुसीबत आगई है। इस आड़े वक्त आपसे मदद लेने आया हूं।"

मैंने पूछा—"आप कौन हैं ? मेरे नाम से किस तरह वाकिफ हुए ? आपका सियासी मकसद क्या है ? क्या मुसीबत आप पर आन पड़ी है ?"

"मैं मरदान जिले के छोटे से गांव गल्लाढेर का रहने वाला हूं।" अजनबी ने कहा—"मेरा नाम भगतराम है। आपको उस नौजवान का

खयाल होगा जिसने लाहोर के गवर्नर पर गोली चलाई थी। वह मेरा भाई था।"

जब उसने अपना नाम और गांव बताया तो मैं उठा और उससे गले मिला। उस गांव में मेरे चाचा की शादी हुई थी। यह बात बाद में मालूम हुई कि मेरी चाची भगतराम के एक पड़ोसी की लड़की थी। अब मैं समझा कि उसको मेरे नाम का कैसे पता लगा। उसने १९३० में मेरा नाम जरूर सुना होगा, जब 'मैं नौजवान भारत सभा' का जनरल सेक्रेटरी था और उन दिनों में पकड़ा भी गया था। भगतराम भी नौजवान भारत सभा का खास मेम्बर था। गल्ला-ढेर में करीब-करीब सब लोग जानते थे कि मेरे चाचा की दूकान काबुल में है और मैं उस पर काम करता हूं। 'भगतराम मेरे चाचा को अच्छी तरह जानता था और कहता था कि काबुल आने से पहले वह मेरे चाचा से गांव में मिला भी था।

मैंने पूछा—"अब आप बताएं कि आपका असली मकसद क्या है और मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं ?"

"मेरा मकसद यह है कि मैं सुभाष बाबू को रूस भेजने के लिए साथ आया हूं और अब ......!" कहते-कहते उसकी जबान रुक गई।

उसकी जबान से सुभाष बाबू का नाम सुनना था कि मेरे तमाम बदन में बिजली दौड़ गई और रोंगटे खड़े हो गए। खुशी से मेरी [illegible] बाबू के [illegible] से आंसू [illegible] पड़े।

मैं [illegible] और मेरे मुंह से आप-से-आप निकल पड़ा "सुभाष बाबू और [illegible] ?' मेरे दिल की धड़कन तेज हो गई और मैं

इस धड़कन को महसूस भी कर रहा था। इतने में एक गाहक दूकान में आया और उसने कुछ मांगा। मैंने बगैर सोचे-समझे कह दिया—"मेरे पास नहीं है।" गाहक के जाने के बाद,मेरे होश ठिकाने आये और मैंने पूछा—"फिर···?"

भगतराम कहने लगा—"यहां आकर हम एक सराय में ठहरे हैं, लेकिन एक काबुली हमारे पीछे पड़ गया है। हमारा खयाल है कि वह अफगानी सी० आई० डी० का आदमी है। उसने हमारा वहां रहना मुश्किल कर दिया है। इसलिए बोस बाबू ने मुझे आपके पास भेजा है कि आप इस कठिनाई में हमारी मदद करें।"

अमरनाथ चाय लेकर आगया और हमने अपनी बातचीत पश्तो की जगह उर्दू में शुरू करदी।

मैंने पूछा—"आप कह रहे थे कि बोस बाबू ने आपको मेरे पास भेजा है, मगर वह तो मुझे जानते ही नहीं हैं! फिर, आप दोनों को यह कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां पर हूं ?"

उसने कहा—"मैं आपका नाम तब से जानता हूं जब आप नौजवान भारत सभा में काम करते थे। मैं भी उन दिनों मरदान की नौजवान भारत सभा का एक मेम्बर था। मुझे पेशावर में सभा के दफ्तर में आने का कई बार मौका मिला था और वहां पर आपको दो-चार बार देखा भी था। मैं यह भी जानता हूं कि १९३० की तहरीक में आपको दो साल की सख्त सजा हुई थी। आपका यहां पर होना आपके चाचा से मालूम हुआ। गांव में हर कोई जानता है कि उनकी एक दूकान काबुल में है, जहां पर उनके भतीजे काम करते हैं। मैंने कई बार तुम दोनों भाइयों को देखा है। तुम दोनों की शक्लें इतनी मिलती हैं कि तुम्हारे भाई को देखकर तुम्हारा ही खयाल हो आता

है। इसीसे तसल्ली करने के लिए ही मैंने पहले तुम्हारा नाम पूछा। कुछ दिन हुए बोस बाबू को मैंने तुम्हारे बारे में बताया था।"

"मेरे बारे में उन्हें बताने की जरूरत कैसे पड़ी?"—मैंने पूछा।

उसने कहा—"उस वक्त कोई खास जरूरत तो नहीं थी, मगर यहां पर आते ही हमने अपने आपको ऐसी हालत में पाया कि हर बात को हर पहलू से सोचना पड़ा। उस वक्त यह भी खयाल पैदा हुआ कि अगर कोई मुसीबत आगई तो क्या करेंगे? इस तरह तुम्हारा जिक्र आया। मैंने बोस बाबू से कहा कि मैं एक ऐसे आदमी को जानता हूं जो यहां पर दुकान करता है, जिसके दिल में अपने मुल्क के लिए तड़प है और जो १९३० में जेल गया था। उन्होंने तो मुझे उसी दिन तुम्हारे बारे में मालूम करने को कहा था। आज मुसीबत के आजाने से तुम्हारे पास आया हूं।

"चार पांच दिन से उस काबुली ने काफी तंग करना शुरू कर दिया है। पहले दिन ही उसकी सूरत देखकर बोस बाबू ने कहा था कि यह कोई खुफिया है, इसलिए मुझे जल्दी ही तुम्हारी तलाश करनी चाहिए।"

लेकिन उसके यहां किसी अजनबी को जाने नहीं दिया जाता। इसलिए कोई कामयाबी हासिल नहीं हुई। एक दिन एक मोटर पर मैंने रूसी झंडा लगा हुआ देखा। मैंने यही सुना था कि सफीर की मोटर पर ही उसके मुल्क का झंडा लगा होता है। इसलिए उस मोटर रूसी सफीरःग की मोटर समझकर रुकवाया। उस मोटर पर ड्राइवर के अलावा एक और आदमी भी था। मैंने टूटी-फूटी फारसी में बोस बाबू के बारे में उसे बताया। मुझे फारसी कम आती थी, लेकिन जो कुछ उसने कहा मैं समझ गया। उसने कहा—'तुम्हारे पास क्या सबूत है कि यह सुभाषचन्द्र बोस ही हैं?' इसलिए हमारी सारी उम्मीदें धूल में मिल गईं। हमारे पास उसको यकीन दिलाने के लिए ऐसा कोई जवाब न था। इसलिए हम चुप होगए और मोटर चल दी।"

मैंने कहा—"रूसी सफीर से कामयाबी न होने की वजह यह है कि आप फारसी नहीं जानते। अगर आपको फारसी आती या यहां आने से पहले आप अपने साथियों से रूसी सफीर से मिलने का तरीका मालूम कर आये होते तो यह दिन देखना नसीब न होता।"

"हो सकता है—"भगतराम ने कहा।

मैं हैरान था कि क्या एक ऐसे आदमी के साथ जिसे अपने काम के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी, बोस बाबू को भेजना ठीक था? चाहिए तो यह था कि उनके साथ ऐसे आदमी को भेजते, जिसको फारसी और रूसी दोनों जबानें अच्छी तरह आती होतीं। अगर ऐसा आदमी मिलना मुश्किल था तो कम-से-कम ऐसा आदमी भेजते जिसका रूसी सफीर से कुछ ताल्लुक होता।

अपनी बात जारी रखते हुए भगतराम ने फिर कहा—"जब रूसी सफीर से कोई उम्मीद नहीं रही तो हमने इटालियन सफीर से ताल्लुक

कायम करने की कोशिश की और इसमें हमें कामयाबी हुई। इसके बाद क्या हुआ यह एक लम्बा किस्सा है। यह बाद में सुन लेना। थोड़े में बता देता हूं कि इटालियन सफीर से मिलने में हमें बहुत दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। उसने हमें तसल्ली दी और कहा—"जितनी जल्दी हो सकेगा, बोस बाबू को रोम या बर्लिन भेज देंगे।"

मने पूछा—"अब आप मुझसे किस तरह की मदद लेना चाहते ह ?'

भगतराम बोला—"एक तो हमारे लिए कोई महफूज जगह हो और दूसरे अगर तुम्हारा रूसी सफीर से कोई ताल्लुक हो, तो बोस बाबू को मास्को भिजवाने का बन्दोबस्त करा दो। गोकि इटली वालों से हमारा ताल्लुक होगया है, लेकिन बोस बाबू बर्लिन या रोम जाने में खुश नही हैं।"

"जगह के लिए तो आप मेरे घर पर आसकते हैं। मगर मेरे खयाल में वह महफूज नहीं है, क्योंकि जिस मकान में मैं रहता हूं उसमें एक और पड़ौसी रहता है। नीचे के हिस्से में वह अपने बाल-बच्चों के साथ रहता है और ऊपर के हिस्से में मैं अपने बाल-बच्चों के साथ। मेरा पड़ौसी पेशावर का रहने वाला है और काबुल में कपड़े का कार-बार करता है। मेरा मकान हिन्दू गुजर में है। हिन्दू गुजर काबुल के उस हिस्से को कहते हैं जहां सभी हिन्दू रहते हैं। यह हिस्सा बहुत ही तंग और गन्दा है, जगह-जगह पर कूडा-करकट जमा रहता है। वैसे तो काबुल के सभी मुहल्ले इसी तरह के हैं, लेकिन हिन्दू गुजर सबसे बढ़-चढ़कर है। यह सब बताते हुए मैंने कहा—यह भी खयाल है कि ऐसी बड़ी हस्ती को गन्दे मोहल्ले और तंग मकान में कैसे लाऊं ?

भगतराम हँसा और कहने लगा—"ऐसी हालत में गंदगी और

कूड़ा-करकट कौन देखता है ? सोचने वाली बात तो तुम्हारे पड़ौसी की है।"

मैंने एक और बात सोची। मेरा एक मुसलमान दोस्त मेरी दूकान के पीछे रहता है। वह मेरे सूबे का ही रहने वाला है। किसी वक्त फौज में नौकर था मगर अपने अंग्रेज अफसरों से झगड़ा करके भाग गया था। उस वक्त उसकी उमर १९–२० साल की होगी। तब से उसने अपनी उमर का बहुतसा हिस्सा चीन, जापान, अमरीका और जर्मनी में बिताया है। और एक जर्मन औरत से शादी करली है। अब उसकी उमर ७० साल की होगी। वह अंग्रेजों के बहुत ही खिलाफ है। हम उसे हाजी साहब कहते हैं। वह हज कर आया है। उसने अपने घर में जरसी वगैरा बुनने की मशीन लगा रखी है और यही उसका रोजगार है। जबसे बोस बाबू हिन्दुस्तान से गायब हुए हैं, उसने उनके बारे में मुझसे कई बार बात की है। वह यही कहा करता है कि "बोस हिन्दुस्तान का शेर है।"

मैंने भगतराम से पूछा—"अगर आप इजाजत दें तो मैं उससे बोस बाबू के रहने के लिए पूछूं।"

भगतराम ने कहा—"आप पूछ सकते हैं, बशर्ते कि हमारे बारे में उसे खबर लग जाने से कोई नुक्सान का अन्देशा न हो। अगर हाजी ने इन्कार कर दिया तब क्या होगा ?"

"मुझे उम्मीद है कि हाजी इन्कार नहीं करेगा। अगर उसने इन्कार कर भी दिया तो मेरा मकान हाजिर है, बशर्ते बोस बाबू उसमें रहना चाहें।"

"इसकी आप फिक्र न करें। जब बोस बाबू गंदी सराय में रह सकते हैं तो आपके घर में भी रह सकेंगे।" भगतराम ने कहा—

"काफी देर होगई है, अब मुझे जाकर बोस बाबू की खबर लेनी चाहिए; आपका आखरी फैसला क्या है ? मेरा खयाल है कि आज की रात हमें उस सराय में नहीं रहना चाहिए ?"

मैंने कहा—"अगर आपको जगह बदलने की जल्दी न होती, तो में आपके लिए कोई और जगह ढूंढ़ता। पर चूंकि आप उस जगह को आज ही छोड़ना चाहते हैं इसलिए चार बजे शाम को यहां आजायं। इस बीच में मैं हाजी से भी मालूम कर लूंगा। अगर उसने मेरी बात मान ली तो आपको उसके यहां ले चलूंगा, नहीं तो मेरा घर तो है ही।"

जब भगतराम जाने लगा तो मैंने पूछा—"जिस तरह आपने पठानी भेस बदला हुआ है, नाम भी तो आपने कोई-न-कोई जरूर रखा होगा ?"

उसने उत्तर दिया—"नाम रखे बिना किस तरह गुजारा हो सकता है ? मेरा नाम रहमतखां है और बोस बाबू का जियाउद्दीन।" और यह कहता हुआ वह चल दिया कि "मैं चार बजे उन्हें लेकर जरूर आऊंगा।"

उसके जाते ही मुझे अपने में कमजोरी महसूस होने लगी। मैं सोचने लगा—बोस बाबू की खोज तो बड़े जोर-शोर से की जारही होगी। हिन्दुस्तान के आस-पास के मुल्कों में अंग्रेजों के आदमी जबरदस्त कोशिश कर रहे होंगे। अगर हाजी ने उन्हें रखने से इन्कार कर दिया और मुझे उन्हें अपने घर पर रखना पड़ा और मेरे मकान पर उनके होने का किसीको पता लग गया, तो क्या होगा ? अगर मेरे साथ मेरी बीवी भी पकड़ी गई तो, इस परदेस में मेरे बच्चों का क्या होगा ? अफगानिस्तान में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को सरकार से

इतना खौफ रहता है कि कोई भी मेरे बच्चों की मदद नहीं करेगा।' लेकिन कमजोरी का यह दौर थोड़ी ही देर रहा।

मैं दूकान से उठकर हाजी के घर गया। हाजी घर में नहीं था। दूकान पर लौटते हुए रास्ते में हाजी मिल गया। इधर-उधर देखकर कोई पास तो नहीं है, मैंने हाजी से पूछा—"हिन्दुस्तान से कुछ आ ' 'सियासी मकसद के लिए छिपकर आये हैं और पनाह चाहते हैं।"

हाजी हंसा और कहने लगा—"तुम अभी बच्चे हो। तुम इन बातों को नहीं जानते। कई दफा ऐसा हो चुका है कि यूरोप में जब भी हमने हिन्दुस्तानियों की मदद की तो फायदे की बजाय उल्टा नुकसान उठाना पड़ा और अगर अब ऐसी हालत में खुदा भी आजाय तो मैं अपने मकान में रखने को तैयार नहीं हूं। क्योंकि मैं जानता हूं हिन्दुस्तानी एतबार के काबिल नहीं होते। अब मैं बूढ़ा भी होगया हूं, इसलिए किसी सियासी काम में पड़ना नहीं चाहता।"

हाजी का उत्तर सुनकर मेरे दिल को सदमा पहुंचा। मैंने अपने मन में कहा कि यह आदमी आजादी के बारे में कितनी बातें करता है, लेकिन जब एक काम आ पड़ा तो साफ इन्कार कर गया।

मैंने हाजी को अपने दोस्तों की सचाई के बारे में शक करने पर कुछ सख्त-सुस्त कहा।

हाजी ने कहा—"नाराज क्यों होते हो, भाई! मैं तो इन्हीं कामों में बूढ़ा हो गया हूं। कई लोगों ने इसी तरह धोखे खाये हैं। मुमकिन है कि जो आदमी तुम्हारे पास आये हों, ठीक हों। अच्छा, नाम तो बताओ?"

"नाम बताने से क्या फायदा? जब आप उसकी मदद नहीं करना चाहते।" मैंने कहा।

"काफी देर होगई है, अब मुझे जाकर बोस बाबू की खबर लेनी चाहिए। आपका आखरी फैसला क्या है ? मेरा खयाल है कि आज की रात हमें उस सराय में नहीं रहना चाहिए ?"

मैंने कहा—"अगर आपको जगह बदलने की जल्दी न होती, तो मैं आपके लिए कोई और जगह ढूंढ़ता। पर चूंकि आप उस जगह को आज ही छोड़ना चाहते हैं इसलिए चार बजे शाम को यहां आजायं। इस बीच में मैं हाजी से भी मालूम कर लूंगा। अगर उसने मेरी बात मान ली तो आपको उसके यहां ले चलूंगा, नहीं तो मेरा घर तो है ही।"

जब भगतराम जाने लगा तो मैंने पूछा—"जिस तरह आपने पठानी भेस बदला हुआ है, नाम भी तो आपने कोई-न-कोई जरूर रखा होगा ?"

उसने उत्तर दिया—"नाम रखे बिना किस तरह गुजारा हो सकता है ? मेरा नाम रहमतखां है और बोस बाबू का जियाउद्दीन।" और यह कहता हुआ वह चल दिया कि "मैं चार बजे उन्हें लेकर जरूर आऊंगा।"

उसके जाते ही मुझे अपने में कमजोरी महसूस होने लगी। मैं सोचने लगा—बोस बाबू की खोज तो बड़े जोर-शोर से की जारही होगी। हिन्दुस्तान के आस-पास के मुल्कों में अंग्रेजों के आदमी जबरदस्त कोशिश कर रहे होंगे। अगर हाजी ने उन्हें रखने से इन्कार कर दिया और मुझे उन्हें अपने घर पर रखना पड़ा और मेरे मकान पर उनके होने का किसीको पता लग गया, तो क्या होगा ? अगर मेरे साथ मेरी बीवी भी पकड़ी गई तो, इस परदेस में मेरे बच्चों का क्या होगा ? अफगानिस्तान में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को सरकार से

इतना खौफ रहता है कि कोई भी मेरे बच्चों की मदद नहीं करेगा। लेकिन कमजोरी का यह दौर थोड़ी ही देर रहा।

मैं दूकान से उठकर हाजी के घर गया। हाजी घर में नहीं था। दूकान पर लौटते हुए रास्ते में हाजी मिल गया। इधर-उधर देखकर कोई पास तो नहीं है, मैंने हाजी से पूछा—"हिन्दुस्तान से कुछ आ· · 'सियासी मकसद के लिए छिपकर आये हैं और पनाह चाहते हैं।"

हाजी हंसा और कहने लगा—"तुम अभी बच्चे हो। तुम इन बातों को नहीं जानते। कई दफा ऐसा हो चुका है कि यूरोप में जब भी हमने हिन्दुस्तानियों की मदद की तो फायदे की बजाय उल्टा नुकसान उठाना पड़ा और अगर अब ऐसी हालत में खुदा भी आजाय तो मैं अपने मकान में रखने को तैयार नहीं हूं। क्योंकि मैं जानता हूं हिन्दुस्तानी एतबार के काबिल नहीं होते। अब मैं बूढ़ा भी होगया हूं, इसलिए किसी सियासी काम में पड़ना नहीं चाहता।"

हाजी का उत्तर सुनकर मेरे दिल को सदमा पहुंचा। मैंने अपने मन में कहा कि यह आदमी आजादी के बारे में कितनी बातें करता है, लेकिन जब एक काम आ पड़ा तो साफ इन्कार कर गया।

मैंने हाजी को अपने दोस्तों की सचाई के बारे में शक करने पर कुछ सख्त-सुस्त कहा।

हाजी ने कहा—"नाराज क्यों होते हो, भाई! मैं तो इन्हीं कामों में बूढ़ा हो गया हूं। कई लोगों ने इसी तरह धोखे खाये हैं। मुमकिन है कि जो आदमी तुम्हारे पास आये हों, ठीक हों। अच्छा, नाम तो बताओ?"

"नाम बताने से क्या फायदा? जब आप उसकी मदद नहीं करना चाहते।" मैंने कहा।

"नहीं, अगर वह हिन्दुस्तान का कोई बड़ा आदमी औ
-के काबिल हुआ तो मैं उसे अपने घर में जगह दूंगा ।"
-उत्तर दिया।

"अच्छा, तुम्हीं बताओ, कौन होगा ?" मैंने कहा।

"क्या बोस तो नहीं है ?"

मैंने जवाब दिया—"अच्छा मानलो कि वह आदमी बोस

हाजी हक्का-बक्का रह गया और उसके मुंह से सिर्फ "ब
-बोस" ही निकला और उसका मुंह खुला का खुला रह गया।

कुछ देर ठहरने के बाद मैंने पूछा—"अब आपकी क्या मज

"मैं उनको रखने को बिलकुल तैयार हूं। तुमने तो मे
-देखा है । बताओ किस कमरे में रखा जाय ?"

कुछ देर सोचकर मैंने मशीन वाले कमरे के साथ वाले ती
-की सलाह दी।

हाजी हिचकिचाया और कहने लगा— "तुम जानते हो कि
जरसियों का कारखाना है । काम करने के लिए कम-से-कम आ
हररोज आते हैं। गाहक भी सीधे अन्दर चले आते हैं, क्यं
जर्मन बीबी पर्दा नहीं करती। अब तुम्हीं बताओ कि इन सब म
और दिक्कतों के होते हुए उनको मैं यहां कैसे रख सकता हूं
ख्याल में तुम्हारा मकान बहुत महफूज है।"

मैंने हाजी को अपने घर के मोहल्ले की गन्दगी और तंग
के बारे में बताया और कहा—"अब चूंकि आपने जगह देने से
कर दिया है। मेरे लिए उन्हें अपने घर लेजाने के अलावा अ
चारा नहीं है। मैंने हाजी को सलाम किया और अपनी
-पर आगया।

: २ :

पहली मुलाकात

चार बजने में कोई दस मिनट थे कि रहमतखां आगया। उसको अकेला देख कर मने पूछा—"कहां हैं बोस बाबू?"

"वह सामने दरिया के दूसरे किनारे खड़े हैं।" उसने जवाब दिया और साथ ही उस तरफ हाथ का इशारा किया, जहां बोस बाबू खड़े थे, लेकिन मैं उन्हें देख न सका।

मेरी दूकान के पास ही काबुल दरिया बहता था। मैंने उसके हाथ के इशारे की तरफ बड़े गौर से नजर दौड़ाई, मगर दरिया की दूसरी तरफ बोस बाबू की शक्ल का कोई आदमी नजर नहीं आया। मैंने दुबारा पूछा—"कहां हैं?"

उसने दूर एक पठान की तरफ इशारा करते हुए कहा—"वह खड़े हैं।" मगर उसके जवाब से मेरी तसल्ली नहीं हुई।

मेरी खामोशी से रहमतखां पर यह जाहिर हो गया कि मैं उनको पहचानने में नाकामयाब रहा हूं। वह कहने लगा—"बोस बाबू की पोशाक और शक्ल बदली हुई है। आप यहां

से नहीं पहचान सकते । अभी साथ चलते ह; मैं आपको दिखा दूंगा।"

मैंने अमरनाथ को मेहमानों के खाने का इन्तजाम करन के लिए घर खबर करने भजा और खुद दूकान बन्द करके रहमतखां के साथ चल दिया। मेरी दूकान से तकरीबन एक फलांग के फासले पर दरिया पर एक पुल था, जहां पर दोनों किनारे की सड़कें आकर मिलती थीं। वहीं बोस बाबू से मिलना तय हुआ था। हम कुछ मिनट पहले पहुंच गये और उन्हें वहां न देख कर उस तरफ चल दिये, जिधर से बोस बाबू को आना था। उस वक्त दफ्तर के बन्द होने से पुल पर काफी भीड़ थी। हम थोड़ी ही दूर आगे गये होंगे कि रहमतखां ने एक पठान की तरफ इशारा करते हुए कहा—"यह है।"

बोस बाबू ऊपर से नीचे तक पठान लगते थे। एक मैलखोरे रंग के कपड़े की पेशावरी सलवार पहने हुए थे, जो काफी मैली हो चुकी थी और टखनों से एक-एक फुट ऊपर चढ़ी हुई थी। सलवार के कपड़े जैसी मैली कमीज भी उनके बदन पर थी। वह पठानी साल्त की बन्द गले की वास्कट पहने हुए थे और उस पर मामूली पोस्तीन की वास्कट थी। सिर पर मामूली पेशावरी कुल्ले पर पठानों की तरह बंधा हुआ पटखा था। पांवों में काबुल की बनी गरम जुरावें और पेशावरी चप्पल थी। करीब-करीब तीन इंच दाढ़ी बढ़ आई थी और चश्मा भी नदारद था। कंधे पर एक मैली-सी चादर थी और पगड़ी की छोटी लड़ आगे और बड़ी पीछे लटक रही थी। ऐसा मालूम होता था कि कोई भिखारी हो।

मुझे ताज्जुब हो रहा था कि क्या यही सुभाष बाबू हैं।

रहमतखां ने मेरा बाजू पकड़ कर हिलाया और कहा—"चलो न, यहां पर खड़े क्या सोच रहे हो ?"

अभी हम कुछ ही आगे बढ़े थे कि मैंने रहमतखां से कहा कि आपका मेरे साथ चलना ठीक नहीं है। बेहतर हो कि तुम दस कदम मेरे पीछे चलो और बोस बाबू तुम्हारे दस कदम पीछे।

उस पुल से मेरा मकान एक मील था और रास्ता बहुत ही खराब था। सड़क पर गड्ढे थे। बोस बाबू को रास्ते में कई बार ठोकरें खानी पड़ीं। कई जगह पर बर्फ बिल्कुल शीशे की मानिन्द जम गई थी और उस पर उन आदमियों का चलना बहुत मुश्किल था जिन्होंने केवल चप्पल ही पहन रखी हो। मेरे दिल में यह डर बना हुआ था कि कहीं बोस बाबू रास्ते में गिर न पड़ें। खुदा-खुदा करके हमने बाजार का तमाम रास्ता तय किया, लेकिन अभी तंग और गंदा मुहल्ला तय करना बाकी था।

मुहल्ले की गली तो पहले से ही काफी तंग थी, मगर लोगों ने अपने मकानों से बर्फ के ढेर गली में फेंक दिये थे, जिससे चलना और भी मुश्किल हो गया था। गली में हम तीनों को छोड़कर और कोई आदमी नहीं था जिससे कि कुछ खतरा महसूस होता। इसलिए बोस बाबू को चलने में तकलीफ महसूस करते देखकर मैं उनके साथ हो लिया। एक जगह तो बोस बाबू का पांव गड्ढे में जा ही गिरा। जल्दी ही मैंने उनको गिरते-गिरते थाम लिया। इत्तिफाक से उसी वक्त मेरे मकान का एक काबुली पड़ोसी कहींसे आ निकला। बोस बाबू को गिरते देख कर बड़ी हमदर्दी से कहने लगा—"भाईजी, कौन-सी धर्मशाला में जाना है ?"

मैं झट बीच में बोल पड़ा—"भाईजी चलो, हम अपना रास्ता लें।

जहां भी इसे जाना होगा, खुद चला जायगा। हम क्यों इस सर्दी में अपन सिर मुसीबत मोल लें? क्या मालूम कौन है, कौन नहीं ?" मैं अपने काबुली पड़ोसी के साथ चल पड़ा। एक मोड़ पर बूट के तसमें बांधने के लिए मैं रुक गया और काबुली आगे चला गया।

इतने में रहमतखां बोस बाबू के साथ आ मिले और हम देखते, भालते, ठोकरें खाते घर पहुंचे। हमें मकान में जाते हुए किसी पड़ोसी ने नहीं देखा। सर्दी ज्यादा होने की वजह से सभी पड़ोसी अपने-अपने मकान में दरवाजे बन्द कर आग के पास बैठे हुए थे।

अब चूंकि बर्फ ज्यादा पड़ रही थी, मैंने संदली का इन्तजाम करके बोस बाबू से अर्ज किया कि गरम पानी मौजूद है। वह हंस कर कहने लगे—"अभी तो जरूरत नहीं है। अलबत्ता गुसल करने के लिए सुबह गरम पानी की जरूरत पड़ेगी। जब से मैंने अफगानिस्तान की सरहद में पांव रखा है गुसल बिल्कुल नहीं किया है और ना कपड़े बदलाये ही हैं।

बोस बाबू ने गीली जुराबें उतारीं। उनके पांव सर्दी से सुन्न हो गये थे। उनकी सलवार भी भीगी हुई थी। मैंने उन्हें एक जोड़ा सलवार और कमीज का दिया और उन्होंने कपड़े बदले। इसके बाद उन्होंने पहली बार ऐनक पहनी। अब मैं उनको आसानी से पहचान सकता था।

लड़की चाय ले आई। चाय प्याली में ढालने से पहले मैंने उनसे उन गल्तियों और तकलीफों के लिए माफी मांगी जो उन्हें मेरे घर पर महसूस हो सकती थीं। बोस बाबू ने मुझे गले लगाया और कहने लगे "क्यों बच्चों की-सी बातें करते हो। आपने इस आड़े वक्त में जो काम किया है वह मैं सारी उम्र नहीं भूल सकूंगा। मुझे यहां पर जितने दिन गुजारने पड़ेंगे इस तरह गुजारूंगा जैसे मैं अपने घर में ही हूं।"

जब हम चाय पी चुके, तो रहमतखां को सराय से सामान लाना

की फिक्र हुई। मैंने पूछा कि कितना सामान है। उसने जवाब दिया—"कोई खास सामान तो नहीं है" फिर भी बगैर मजदूर के लाना मुश्किल है। साथ ही यह खतरा भी है कि अगर मैं मजदूर के सिर पर सामान उठवा कर लाऊं तो वह सिपाही कहीं यहां तक मेरा पीछा न करे।"

"मैं इन्तजाम किये देता हूं।" मैंने कहा, "आप अमरनाथ को अपने साथ ले जायं। ध्यान रखियेगा कि वह सिपाही अमरनाथ को आपके साथ न देख ले। बेहतर तो यह है कि आप सराय में अमरनाथ से पहले जायं और अमरनाथ मजदूर को लेकर आपके बाद पहुंचे। आप अपनी कोठरी के आगे खड़े रहिएगा ताकि अमरनाथ आपको देख सके और सीधा आपके पास आ जाय। जो सामान जरूरी समझें उसे अमरनाथ के हवाले कर दें। वह मजदूर को लेकर आजायगा और आप सराय वाले का किराया वगैरा चुका कर आजाइएगा।"

बोस बाबू ने कहा कि यह ठीक है। इतना खयाल रखना कि कोई पीछा न करे और अगर किसीके पीछा करने का शक हो जाय तो इधर-उधर घूमते रहना और उसकी नजर बचा कर आ जाना।

मैंने अमरनाथ को बुला कर सब कुछ समझा दिया और उसे रहमतखां के साथ भेज दिया।

रहमतखां के चले जाने के बाद मैं खान के बारे में बीबी से बातचीत करने गया। उसने पूछा,—"ये मेहमान कौन हैं?" मैंने बताया कि ये लगमान के रहने वाले हैं।" लगमान जलालाबाद जिले में एक छोटा-सा गांव है। इस गांव के हमारे बहुत से व्यापारियों और रिश्तेदारों को मेरी बीबी जानती थी। इसलिए उसने पूछा—"मैं

लगमान के सभी आदमियों को जानती हूं, लेकिन इनको मैंने पहले कभी पेशावर में नहीं देखा ।"

"तुम पेशावर में इनको देख किस तरह सकती थीं ।" मैंने कहा। "यह एक बार ही पेशावर गये थ । मैंने इनको खाने पर बुलाया था, मगर उस वक्त किसी वजह से इन्होंने हमारे साथ खाना नहीं खाया ।"

"अब ये कैसे आ गये ? आखिर ये हैं कौन ?" बीवी ने पूछा ।

मैंने उसकी तसल्ली कराते हुए कहा—"ये हमारे नये व्यापारी हैं। पेशावर में आये और दिसावर माल खरीदने चले गये थे। ये दोनों भाई हैं। एक बेचारा बीमार है। इलाज कराने के लिए यहां पर आये हैं। आज इत्तफाक से रास्ते में मिल गये तो मैं इनको यहां ले आया। हिन्दू हैं।"

बीवी बोली—"क्यों जमीन आसमान के कुलाबे मिला रहे हो ! झूठ की भी कोई हद होती है !"

"क्या मैं अब तक झूठ बोल रहा था ?"

"झूठ नहीं तो और क्या ? मुसलमान को हिन्दू बता रहे हो, इससे ज्यादा झूठ और क्या हो सकता है ?"

"क्या पागल हो गई हो ?" मैं बोला ।

"अमरनाथ ने मुझे सब कुछ बता दिया है और उसकी बातों से मुझे शक हो गया है ।" वह बोली ।

"अमरनाथ ने क्या कहा ?" मैंने पूछा ।

"मुझे पता चल गया है कि किस तरह बिना दाढ़ी वाला आदमी तुम्हारे पास आया, किस तरह मुसलमानी ढंग से उसने सलाम किया

और पश्तो में बातें की। उसके लिए तुमने मुसलमानी चाय मंगाई और फिर हिन्दुस्तानी में बातचीत की। क्या अमरनाथ ने मुझसे ये बातें गलत कहीं ?"

"अच्छा चलो, अमरनाथ सच्चा और मैं झूठा सही। लेकिन यह तो बताओ कि खाने का क्या इन्तजाम किया है ?"

"रोटी की आप फिक्र न करें। मेहमानों के लिए जो कुछ तैयार कर सकती थी कर लिया है। मगर जब तक सही बात नहीं बताओगे तबतक दिल को तसल्ली नहीं होगी।"

मेरा खयाल था कि बोस बाबू चार-पांच दिन ठहर कर चले जायेंगे, इसलिए बीवी को उनकी बाबत कुछ बताने की जरूरत नहीं। लेकिन अब राज़ बताये बिना कोई और चारा नही था। इसलिए बीवी को यह यकीन दिलाकर, कि सारी बातें बाद में बता दूंगा, मैं बोस बाबू के पास चला गया।

: ६ :

सराय की अंधेरी कोठरी

उस वक्त मैं सुभाष बाबू के साथ अकेला था। मैंने उनसे पूछा कि जिस अफगान सिपाही को आप लोगों पर शक हो गया था, उसने आपको क्या तंग किया था ?

सुभाष बाबू कहने लगे—"हमें यहां आये १२ दिन हो गये हैं। मैंने पेशावर १९ जनवरी को छोड़ा था। तीन रोज रास्ते में बीते। जिस वक्त हम यहां पहुंचे सख्त सर्दी थी। बर्फ पड़ रही थी। मैं तो इस मुल्क से नावाकिफ था ही, रहमत खां भी ऐसा ही था। आपको उस जगह का नाम मालूम होगा जहां लारी वाले पुलिस से बचने के लिए तमाम सवारियों को उतार देते हैं। मेरा ख्याल है कि वहां पर चुंगी घर भी है। क्योंकि मेरे सामने एक आदमी ने लारी का तमाम सामान देखा था और कागज पर दस्तखत कराये थे। दस्तखत के बिना लारी आगे नहीं जा सकती थी।"

"शायद आपका मतलब लाहोरी दरवाजे से है, जिसके सामने बड़ा मैदान है। वहां पर एक छोटा-सा पुल भी है।" मैंने कहा।

"हां, वह लाहौरी दरवाजा ही है,"—बोस बाबू ने कहा, "बर्फ गिरने की वजह से कोई बग्घी वगैरा नहीं थी। अगर होती भी तो हमारे किस काम की ? हमें यह भी तो नहीं मालूम था कि जाना कहां है। कुछ दूर पर कुछ आदमी दिखाई दिये। हम उसी तरफ चल दिये। रास्ते में बर्फ और कीचड़ की बदौलत काफी तकलीफ उठानी पड़ी। थोड़ी देर बाद हम एक बाजार में पहुंचे। वहां रहमतखां ने एक आदमी से पूछा कि क्या कहीं आस-पास ठहरने की कोई जगह है ? उस आदमी ने पास ही एक सराय की तरफ इशारा किया।

"हम बताई हुई सराय में गये। वहां पर उस वक्त चार पांच खाली टांगे व गाड़ियां खड़ी थीं। दस-बारह ऊंट, दस-पंद्रह गधे और कुछ घोड़ियां भी बंधी थीं। उसे देख कर मुझे तो ऐसा लगा, जैसे यह जगह मुसाफिरों के लिए नहीं हो सकती और बताने वाले ने हमारे साथ मजाक किया है।

"सराय में जा कर हम इधर-उधर देखने लगे। नीचे तो कोई कोठरी नजर आई नहीं। इतने में एक आदमी सराय में आता हुआ दिखाई दिया। रहमतखां ने उससे पश्तो में सराय के मुन्तजिम के बारे में पूछा, मगर उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाद में मालूम हुआ कि वह पश्तो नहीं जानता था। हमारा खयाल था कि अफगानिस्तान की मादरी जबान पश्तो है, मगर यहां आकर मालूम हुआ कि काबुल शहर की मादरी जबान फारसी है और पश्तो बहुत कम आदमी जानते हैं। रहमतखां सिर्फ पश्तो अच्छी तरह जानता था और फारसी उसको नहीं के बराबर आती थी।

"इतने में हमने देखा कि ऊपर की मंजिल से एक आदमी नीचे

की तरफ आ रहा है'। रहमतखां ने उससे सराय के चौकीदार की बाबत पूछा। भला हो उसका; उसने हमें एक छोटी-सी कोठरी दिखाई, जो सराय के दरवाजे के अन्दर की तरफ थी। उसमें सराय का चौकीदार रहता था। वह रजाई ओढ़े पड़ा था और उसकी शक्ल चीनियों से मिलती-जुलती थी।"

मैं बीच ही में बोल उठा—"ठीक है। यहां पर एक कौम ऐसी है जिसको हजारा कहते हैं। वह अफगानिस्तान के उस हिस्से में रहती है जहां बारह महीने बर्फ जमी रहती है। यह कौम अफगानिस्तान के तमाम बाशिन्दों में सब से ज्यादा गरीब है। ये लोग ज्यादातर भिश्ती, चौकीदार और मजदूर का काम करते हैं।"

बोस बाबू ने आगे कहा—"चौकीदार ने हमें देख कर पश्तो में पूछा कि क्या काम है। रहमतखां ने जवाब दिया कि हम मुसाफिर हैं और रात को यहां ठहरना चाहते हैं। खुदा का शुक्र है कि वह पश्तो जानता था। उसने ऊपर जाकर एक कोठरी दिखाई और उसका किराया एक रुपया (अफगानी) रोजाना बताया। उस कोठरी से जेल की फांसी की कोठरियां बेहतर होती हैं। अगर उसके दरवाजे बन्द कर दें, तो अन्धेरी रात और दिन में कोई फर्क न जान पड़े। फिर भी उस वक्त उस कोठरी को पा कर हमें खुशी हुई। सर्दी काफी थी और हमारे पैर जवाब दे चुके थे। मैंने रहमतखां को चौकीदार से चारपाइयों की बाबत मालूम करने के लिए भेजा। चौकीदार बहुत खुश हुआ और उसने दो चारपाई आध रुपया (अफगानी) मांगा। इसके बाद रहमतखां लकड़ी लेने बाजार गया। लकड़ियां गीली थीं, इससे कोठरी में धुआं भर गया। कोठरी का दरवाजा हम खुला नहीं रख सकते थे, क्योंकि तेज ठंडी हवा चल रही थी। इसलिए

दुबारा बाजार में खुश्क लकड़ियां लानी पड़ीं और तब जाकर हम कुछ गरम हुए और आंखों से पानी निकलना बन्द हुआ।

"शाम के वक्त रहमतखां बाजार से कुछ मोमबत्तियां रोशनी करने के लिए ले आया था। साथ ही वह खुश्क रोटी और कबाब के टुकड़े भी ले आया था। जब मैं रोटी नहीं खा सका, तो रहमतखां मेरे लिए चाय ले आया। चाय सब्ज थी और मैं उसमें रोटी भिगो-भिगो कर खाने लगा। नींद तो काफी लग रही थी; क्योंकि पिछली रात हमने जाग कर काटी थी। बिस्तर न होने से ठीक से सो न सके। जब सुबह हुई तो जिस्म के तमाम जोड़ों में दर्द हो रहा था और आंखें सूज गई थीं।

"नाश्ता करने के बाद रहमतखां दो छोटी-छोटी रजाइयां, दो पोस्तीन की वास्कटें, एक केतली और दो छोटी-छोटी दरियां बाजार से ले आया।"

: ४ :

पुलिस का भूत

घोष बाबू ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"छः दिन पहले रहमतखां ने आकर कहा कि नानबाई की दूकान पर एक आदमी सफेद कपड़े पहने हर वक्त बैठा रहता है। जब से हम आये हैं मैं उसको उसी दूकान पर बैठा देखता हूं। आज वह मुझे बड़े गौर से देख रहा था। मेरा खयाल है कि वह सी० आई० डी० का आदमी है।

"हमने अपना खाना खतम ही किया था कि वही सिपाही कोठरी के दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया और बड़े रौब से पन्नो से कहने लगा—"तुम कौन हो? कहां से आये हो? यहां पर क्या काम है?"

"मैं पश्तो तो नहीं जानता था; लेकिन उसकी बातचीत के लहजे से समझ गया कि वह हमारे यहां पर आने की वजह मालूम कर रहा है। उसके जाने के बाद रहमतखां ने मुझे सारी बात बताई। उसने सिपाही को जवाब दिया था—हम मुसाफिर हैं और आजाद कबीले के रहने वाले हैं। मेरी तरफ इशारा करके उसने कहा—यह मेरा बड़ा भाई है। गूंगा और बहरा है। बेचारा बीमार है। इसीलिए मैं इसको सरहदे-

साहब की जियारत के लिए लाया हूं। सखी साहब को जाने का रास्ता बर्फ की वजह से बन्द हो गया है, इसलिए हम यहां पर ठहर गये हैं, रास्ता खुलने पर चले जायेंगे।"

"यह सुनकर सिपाही कहने लगा कि मैं इन बातों को नहीं मानता। तुम दोनों मेरे साथ कोतवाली चलो। सिपाही के इस तरह बात करने पर हमें बड़ा फिक्र हुआ और हम सोचने लगे कि यह मुसीबत कहांसे पैदा हो गई। आखिर रहमतखां ने मिन्नत के लहजे में कहा—'क्यों मुसाफिरों को तंग करते हो? सर्दी की वजह से मेरा भाई तो चल भी नहीं सकता। क्या मुसलमानों को तंग करने से सवाब मिलता है?' सिपाही के दिल पर इन बातों का कोई असर न हुआ। आखिर रहमतखां ने हिम्मत की और कहा कि चलो मैं कोतवाली चलता हूं। यह (मेरी तरफ इशारा करके) तो बीमार है, इसलिए नहीं जा सकता।

"रहमतखां के इस जवाब से सिपाही कुछ नरम पड़ा और कहने लगा—अच्छा, अगर यह बीमार नही होता; तो मैं तुम दोनों को कोतवाली ले जाता। चूंकि यह बीमार है और तुम मुसाफिर हो, मुझे तुम पर रहम आ गया है। यहांसे जल्दी चले जाने की कोशिश करना।

"रहमतखां ने जवाब में कहा कि अगर रास्ता साफ हो जाय, तो हम आज ही चले जांय।

'अच्छा खान', सिपाही ने कहा, 'जाओ आराम करो। आज सख्त सर्दी है, मुझे चाय के लिए कुछ दो।'

"रहमतखां ने उसको दो रुपये (अफगानी) का नोट दिया और वह चलता बना। तीसरे दिन वह फिर आ धमका। उस वक्त कोठरी में मैं अकेला था। उसने आते ही पश्तो में कुछ कहा, मगर मैंने हाथ के इशारे

से अपने को गूंगा और बहरा बताया। इस पर उसने कुछ कहा नहीं, मगर वह कोठरी के आगे टहलने लगा। दो-चार मिनट बाद रहमतखां आ गया। सिपाही उसके साथ बड़ी अच्छी तरह पेश आया और बोला—'क्यों खान, अभी तक सखी साहब को जाने वाली लारी नहीं मिली?' रहमतखां ने जवाब दिया—'अगर मिल जाती तो हम यहां पर अभी तक बैठे रहते! मैं तो लारियों वाली सराय से ही होकर आ रहा हूं।' इस बार फिर उसे चाय के लिए पांच अफगानी रुपये देने पड़े।"

मैंने बोस बाबू को टोकते हुए कहा—"गलती तो यही थी कि आपने उसे पांच रुपये दिये। यहां के सिपाहियों की रिश्वत आध रुपया या ज्यादा से ज्यादा एक रुपया है। पांच रुपयों ने उसके दिल में जरूर कोई शुबा पैदा कर दिया होगा।"

"अगर पांच रुपयों से जान छूट सकती थी तो सौदा कुछ महंगा नहीं था, मगर बाद में हमें और भी रुपये देने पड़े।" बोस बाबू ने अपनी कहानी को जारी रखते हुए कहा। "सिपाही के जाने के बाद मैंने रहमतखां से कहा कि उससे जल्दी जान छुड़ानी चाहिए। सिपाही लालची मालूम होता है, हम कब तक पैसे देते रहेंगे। रहमतखां ने कहा कि जान तो तभी छूट सकती है जब हम किसी दूसरी जगह में चले जायं।

"लेकिन अगर यह भी इसको या इसके किसी भाई-बन्द को मालूम हो गया, तो क्या होगा—मैंने कहा। रहमतखां के पास इसका कोई जवाब न था। वह खामोश हो गया। तब मैंने उससे आपकी तलाश करने के लिए कहा और सोचा कि शायद आपसे कुछ मदद मिले। रहमतखां ने मुझे आपका पता पहले ही बता दिया था, मगर उसने इतना ही कहा था कि आप नौजवान भारत सभा के सेक्रेटरी थे, १९३०

में कैद हुए थे और आपके चाचा की शादी उसके गांव में हुई है।

"दो दिन में उसने आपकी दूकान ढूंढ़ ली। जब मैंने उससे आपसे न मिलने की वजह मालूम की, तो वह कहने लगा कि मुझे शरम आती है कि एक तो मैं उनकी शक्ल से वाकिफ नहीं हूं और दूसरे वह हमारे बारे में क्या सोचेंगे कि बगैर इंतजाम किये सियासी मकसद के लिए पेशावर से चल पड़े।

"उसकी इन बातों से मुझे बड़ा गुस्सा आया और मैंने उससे कहा कि क्या तुम यह चाहते हो कि हम गिरफ्तार हो जांय; कम से कम इतना तो मालूम कर आओ कि उत्तमचन्द यहां पर हैं या नहीं।

"दूसरे दिन (यानी कल) हम नाश्ता कर रहे थे कि वह सिपाही फिर आया। आते ही उसने रहमतखां को सलाम किया। इस बार वह सीधा अन्दर आकर चारपाई पर बैठ गया और पूछने लगा—'क्या वजह है कि आप अभी तक सखी साहब की जियारत के लिए नहीं गये ?'

"रहमतखां ने जवाब दिया—'किस तरह जायं, नजदीक जगह तो है नहीं कि पैदल चले जायं। लारी कोई मिलती नहीं। हम क्या करें ? हम तो खुद इस जगह से तंग आ गये हैं।'

"सिपाही बोला—'लारी क्यों नहीं मिलती ? कल शाम जब मैं यहांसे गया था, तो सराय अब्दुल रहमान के अड्डे पर मालूम हुआ कि कल ही एक लारी गई है। डाक की लारी तो हफ्ते में दो बार जाती ही है।

"रहमतखां ने कहा—'मैं तो कल भी सराय अब्दुल रहमान में लारी की बाबत मालूम करने गया था। मुझे तो किसीने लारीके जाने के बारे में नहीं बताया। डाक के मुत्तल्लिक तो मुझे इल्म नहीं कि वह भी उसी अड्डे से जाती है। आज मैं फिर जाऊंगा और

अगर डाक की या कोई और लारी मिल गई, तो हम आज ही जायेंगे।'

"इस पर सिपाही ने कुछ रुख बदलते हुए कहा—'नहीं मुझे तुम पर शक हो गया है। मैं तुम्हें पांच-छः दिन से रहा हूं। आज मैंने अपने थानेदार साहब से बात की थी। उ हुक्म दिया है कि मैं तुम दोनों को उनके पास ले चलूं। ने चाय पी लो और मेरे साथ चलो।'

"उसकी बातचीत से हम फौरन समझ गये कि वह और लेना चाहता है और थानेदार का नाम उसने हमें सिर्फ डरा लिए लिया है।

"रहमतखां बोला—'हम लोग तो मुसाफिर हैं फिर भी आपको तंग करना ही है तो मैं चाय पीकर आपके साथ चलता हूं भाई की टांगों में सख्त दर्द है, यह नहीं चल सकेगा।'

"इस पर सिपाही कुछ सख्ती से बोला—'यह नहीं हो सक मैं तुम दोनों को लेकर जाऊंगा। गूंगा-बहरा होगा, मगर चल इसको क्या तकलीफ हो सकती है।'

"रहमतखां भी जाने के लिए तैयार नहीं था; यह बात तो सिपाही को नरम करने के लिए कही थी। मगर जब उसने सि का सख्त लहजा सुना तो पांच रुपये का नोट बढ़ाते हुए क 'जब मैं तुम्हारे साथ चलता हूं तो इसकी क्या जरूरत है?'

"सिपाही ने नोट को जेब में डालते हुए कहा—'मैं पांच में फिसलने वाला नहीं हूं। पांच रुपये की भी कोई कीमत होती थानेदार साहब का हुक्म भी न मानूं और पांच रुपये लूं, यह नहीं सकता।' रहमतखां ने पांच का नोट और निकाला। सिपा

उसे भी कम वताया। आखिर १७ रुपये पर फैसला हुआ। (अफगानी सिपाही की तनख्वाह तीस रुपये होती है; जो कि हिन्दुस्तानी सिक्के के हिसाव से छः रुपये होती है।)

"रुपये लेकर सिपाही ने कहा—'अच्छा आज तो मैं तुमसे कुछ नहीं कहता, लेकिन वेहतर होगा कि तुम यहांसे कल ही चले जाओ। अगर कल तक नही गये; तो मजबूर होकर मुझे तुम्हें थानेदार साहव के पास ले जाना पड़ेगा।'

"रहमतखां ने उसका शुक्रिया अदा किया और कहा—'मैं अभी लारी के वारे में पूछने जाता हूं, अगर आज जाने वाली कोई लारी मिली तो आज ही चले जायेंगे, नहीं तो कल तो जरूर चले जायेंगे।'

"मैंने अपनी घड़ी रहमतखां को दे रखी थी। जब मैंने अपने आपको वहरा और गूंगा वता रखा था, तो यह ठीक न था कि अपनी कलाई पर घडी वांधता। रुपयों को निकालते और देते वक्त सिपाही ने रहमतखां की कलाई में घड़ी देख ली और उसे देखने के लिए मांगी। रहमतखां ने अपनी कलाई उसके सामने कर दी। इस पर वह बोला—'यह घड़ी तो मुझे उम्दा नजर आती है; कितने की होगी? रहमतखां ने जवाव दिया कि घड़ी मामूली है और इसकी कीमत मुझे नहीं मालूम। इस पर सिपाही ने ललचाई नजरों से घड़ी की ओर देखते हुए कहा—'खान, रुपये तो तुमने वहुत कम दिये हैं। यह घड़ी भी मुझे दे दो। मुझे यह वहुत पसन्द आ गई है।' कोई चारा न था। घड़ी देनी पड़ी।

"सिपाही के चले जाने के वाद मैंने रहमतखां को आपके पास जाने के लिए मजवूर किया, मगर वह जल्दी ही वापिस आगया और

बोला कि दूकान बन्द है। वह दो बार फिर गया और दूकान बन्द देख कर लौट आया।"

मैंने कहा—"हां, कल सर्दी ज्यादा थी; तबियत नहीं चाही कि दूकान पर आऊं। आज-कल कारोबार भी वैसे ही कम होता है।"

घोस बाबू अपनी कहानी आगे बढ़ाते हुए बोले—"कल का दिन तो बहुत फिक्र और गम में गुजरा। बहुत कुछ सोचा-विचारा और आखिर हम इसी नतीजे पर पहुंचे कि बिना आपकी मदद के इस आदमी से छुटकारा नहीं मिल सकता। आज सुबह रहमतखां आपके पास आने की तैयारी कर रहा था कि वह खबीस फिर आ पहुंचा। उस वक्त मुझे बड़ा गुस्सा आया; पर मौका नाजुक देख कर मैं चुप रहा। आते ही उसने कहा—'खान, जो घड़ी तुमने मुझे दी थी, वह थानेदार साहब ने ले ली। पूछते थे कि यह घड़ी कहां से ली है। मैंने बहाना कर दिया कि मेरे भाई की है। उनको कुछ शक तो पड़ गया था, मगर मैं यही कहता रहा कि मेरे भाई की है। तुम लोगों की बाबत भी वह पूछ रहे थे। मैंने कह दिया कि वे सराय छोड़ कर चले गये हैं। खान, घड़ी तो बहुत उम्दा थी, कितने रुपये की थी?' इस पर रहमतखां ने कहा कि घड़ी उम्दा थी, तुमने थानेदार को क्यों दे दी।

"उस वक्त सिपाही ने थानेदार को पांच-सात गालियां सुनाईं और कहा कि अभी जाकर अपनी घड़ी वापस लेता हूं। जाते हुए वह बोला—'आज मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं है। अगर तुम्हारे पास पांच का नोट हो, तो उधार दे दो। मैं कल वापस कर दूंगा।' रहमतखां जानता था कि उसे वापस कौन करता है। मुश्किल से पांच का नोट निकाल कर उसने सिपाही के हाथ पर रख दिया।

"सिपाही के जाने के बाद रहमतखां थानेदार के पास गया और

बोला—'इस सिपाही ने हमें बहुत तंग कर दिया है। आज हम किसी दूसरी सराय में कोठरी तलाश करेंगे।' इसपर चौकीदार बोला—'यह सिपाही बहुत ही हरामी है। अभी-अभी मैंने उसको बहुत कुछ कहा-सुना है। अब वह आपको तंग नहीं करेगा।'

"उसके बाद रहमतखां आपके पास आया और फिर क्या हुआ यह आप जानते ही है।"

: ५ :

बीवी की तसल्ली

अभी हम बातें कर ही रहे थे कि रहमतखां और अमरनाथ सामान लेकर सराय से आ गए। हम सबने खाना खाया और रेडियो पर खबरें सुनीं। इसके बाद बोस बाबू ने मुझसे पिछले दो हफ्तों की जंग और हिन्दुस्तान की मोटी-मोटी खबरों के बारे में पूछा। १९ जनवरी से उन्होंने कोई खबर नहीं सुनी थी।

उस वक्त मुझे जो खबरें याद थीं, मैंने बता दीं और यह भी कहा कि ब्रिटिश सफीर से मुझे हर हफ्ते "सिविल एंड मिलिटरी गजट' मिल जाता है। यह सुनकर बोस बाबू बहुत खुश हुए। मैंने रेडियो की खबरों का जिक्र करते हुए बताया कि किस प्रकार हरिद्वार में एक साधु बोस बाबू के धोखे में पकड़ लिया गया था और बाद में छोड़ दिया गया। इसके अलावा, मैंने उन्हें सरदार सरदूलसिंह कवीशर का वह बयान भी बताया, जिसमें उन्होंने कहा था कि सुभाष बाबू साधु बनने की सोच रहे हैं।

ये बातें सुनकर बोस बाबू हंस दिये। रात ज्यादा होगई थी और

मैंने बोस बाबू को और ज्यादा तकलीफ देना ठीक नहीं समझा। बिस्तरों का इन्तजाम कर मैं अपने कमरे में चला गया ।

कमरे में जाकर मैंने देखा कि बीवी बैठी हुई है। पूछा कि क्या बात है जो अब तक सोई नहीं। उसने कहा—"सोने की बहुत कोशिश की, मगर नींद नहीं आई। नींद आ भी कैसे सकती है, जब आप घर में पुरसरार (रहस्यपूर्ण) आदमी ले आये हैं और उनके मुतल्लिक सही हाल बताने में भी आनाकानी कर रहे हैं।"

"मैंने तो सब बातें ठीक-ठीक बता दी हैं । अब और क्या बताऊं ?" मैंने कहा।

बीवी बोली—"मैं जानती हूं कि आपने क्या-क्या ठीक बताया है। अच्छा, उस सिपाही का क्या मामला है, जिसे रुपये और घड़ी देकर इन्होंने अपनी जान छुड़ाई ?"

मैं—"तो, तुम दरवाजे के पीछे खड़ी होकर सब बातें सुन रही थीं ? वह तो एक पुराना किस्सा सुना रहे थे।"

बीवी—"कहां खड़े होकर सुना, इससे क्या ? कितने सीधे बनते हैं ! मुझे तो बिल्कुल बेवकूफ ही समझ लिया है ! अगर इन मेहमानों के मुतल्लिक कुछ नहीं बताना चाहते, तो मैं जबरदस्ती तो कर नहीं सकती, फिर भी जो कुछ मैं जानना चाहती थी, जान ही गई हूं ।"

"तो फिर, मुझसे पूछने की क्या जरूरत है ? मैंने बता तो दिया कि लगमान के रहने वाले हैं । एक बेचारा बीमार है, घर से बाहर नहीं जा सकता; दूसरा उसकी खिदमत के लिए घर में रहेगा ।"

"ये तो अजब किस्म के मेहमान निकले,"—बीवी ने जरा जोर से बोलते हुए कहा ।

मैंने उसके मुंह पर हाथ रखते हुए कहा– "जोर से मत बोलो। वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

बीवी ने मेरा हाथ हटाते हुए कहा—"क्यों न जोर से बोलूं ?" और वह और तेज आवाज में कहने लगी—"ये अजब किस्म के मेहमान निकले, जो दिन और रात घर में छिपे रहेंगे। ना बाबा, मैं ऐसा न होने दूंगी। मालूम नहीं कौन हैं और कौन नहीं। मैं किसी मर्द को आपके पीछे घर में नहीं रखूंगी। अगर आपको इन्हें छिपा कर रखना है, तो कहीं और इन्तजाम कर दीजिये। इस घर में मुसलमानों के लिए जगह नहीं ह। अगर आपने इन्हें जबरदस्ती घर में रखा तो . . . ।"

अभी तक तो मैं इस खयाल में था कि असलियत न बताने से काम चल जायगा, मगर बीवी का रवैया देखकर मैंने सोचा कि खामख्वाह बात का बतंगड़ बन जायगा और सही हाल बता देने से फायदा ही होगा, नुकसान नहीं। मैंने यह भी सोचा कि मुमकिन है कि मेहमानों को मेरे पास ज्यादा दिन ठहरना पड़े और उस हालत में बात बताये बिना काम न चलेगा। इसलिए मैंने बीवी को असलियत बता दी। सारी बातों को सुनने के बाद वह डर गई और कहने लगी—"अगर किसीको इनका यहां होना मालूम हो गया तो बड़ी मुसीबत आयेगी। ये गिरफ्तार हो जायेंगे और हमें न मालूम क्या-क्या मुसीबत उठानी पड़ेगी।"

मैंने कहा— "इसीलिए तो कहता था कि जोर-जोर से न बोलो। खैर, अब भी कोई बात नहीं है। अगर हम एहतियात से काम करें, तो इनका यहां पर होना किसीको मालूम नहीं हो सकता। हमारे लिए तो यह एक बड़ी बदकिस्मती की बात होगी अगर ये हमारे यहां

पकड़े गए। दुनिया हमें क्या कहेगी ? हम किसीको मुंह दिखाने के काबिल न रहेंगे। इससे ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि जितने दिन ये यहां पर रहें किसी को कानोंकान खबर न हो।"

अब बीवी की बातचीत का ढंग बदल गया था। वह बोली—"यह हमारा फर्ज है कि हम हर मुमकिन तरीके से बोस बाबू की हिफाजत करें। इस सिलसिले में अगर मुझे अपनी जान भी निछावर करनी पड़े तो मैं पीछे न हटूंगी। परमात्मा का लाख-लाख शुक्र है कि उसने हमें ऐसे आदमी की खिदमत करने का मौका दिया। आपने बहुत अच्छा किया जो उनको यहां ले आए।"

बीवी की इन बातों से मुझे बड़ी खुशी हुई। इस काम में उसने जो मदद की, वह बयान से बाहर है। बोस बाबू को ४८ दिन तक ऐसी हालत में घर पर छिपाकर रखना उसकी ही हिम्मत और दिलेरी से मुमकिन हो सका। मकान के किसी पड़ोसी को भी बोस बाबू के मुतल्लिक कुछ मालूम नहीं हो सका।

अगले दिन बोस बाबू को खाना खिलाने में मुझे देर होगई और मैं वक्त पर दूकान न जा सका। जब बोस बाबू ने पूछा कि दूकान कब जाते हो तो मैंने कहा—"रोज तो १०-१०॥ तक चला जाता हूं, लेकिन आज १२ बज गए हैं।" इस पर बोस बाबू बिगड़े और बोले—"आप रोज के वक्त दूकान पर जाया कीजिये और हमारे खाने का इन्तजार न किया कीजिये। कल से हम खाना जल्दी खा लिया करेंगे। दूकान पर देर से जाने में शक हो जाने का अन्देशा है।"

दूकान जाने से पहले मैंने 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' की कुछ पुरानी कापियां बोस बाबू को दीं और कमरे में बाहर से ताला लगा कर चाबी बीवी को दे दी।

यह फैसला हमने पहले से ही कर लिया था कि दिन में बोस बाबू को कमरे में बन्द करके ताला लगा दिया करेंगे, ताकि अगर दिन में पड़ोस या रिश्ते की औरतें आयें तो कमरे को बन्द देखकर उसके अन्दर जाने की न सोचें।

उस रात खाना खाने से पहले जब बातचीत छिड़ी, तो मैंने बोस बाबू से पूछा—"आप कलकत्ता से निकल कर यहां तक किस तरह आए? अगर कोई हर्ज न हो तो मेरी ख्वाहिश है कि मैं सारा किस्सा आपकी जबान से सुनूं।"

: ६ :

कलकत्ता से पेशावर

बोस बाबू ने कलकत्ता से निकल भागने की कहानी सुनाते हुए कहा—"मास्को जाने का मेरा इरादा बहुत दिनों से था, मगर इसका इंतजाम कई महीनों बाद हुआ। जिस पार्टी ने इंतजाम करने का वायदा किया था, वह मुझे आज से दो महीने पहले ही कलकत्ता से निकालना चाहती थी, लेकिन उन दिनों मेरा वहांसे निकलना मुश्किल था। अव्वल तो कलकत्ता कार्पोरेशन का एक ऐसा काम था, जो मेरे बगैर पूरा नहीं हो सकता था; दूसरे, उस वक्त दाढ़ी भी इतनी नहीं बढ़ी थी कि आसानी से भेस बदल सकता। इसलिए उस वक्त मैंने इन्कार कर दिया, लेकिन अब महसूस करता हूं कि अगर तब जाने के लिए तैयार हो गया होता, तो कोई तकलीफ न उठानी पड़ती। जो आदमी उस वक्त मेरे साथ जाने वाला था, उसके ताल्लुकात रूसी सफारत से बने हुए थे। जब मैं उसके साथ जाने के लिए राजी न हुआ तो वह अकेला चला गया और आजकल मास्को में है।

"कार्पोरेशन की जमीन का कुछ झगड़ा था। उसे तय करके मैंने मकान से निकलना बन्द कर दिया और यह ऐलान कर दिया कि मेरी सेहत खराब हो गई है और डाक्टरों ने मुझे कुछ दिन के लिए आराम

करने को कहा है । इसलिए कोई भी मुझसे मिलने की कोशिश न करे और किसी को कोई बहुत ही जरूरी काम हो, तो वह टेलीफोन से बात करले । कलकत्ता से भाग निकलने से आठ दिन पहले मैंने अपने रिश्तेदारों को भी कमरे में आने से रोक दिया था। जो नौकर खाना लेकर आता था, उसे भी हिदायत थी कि खाना बाहर के कमरे की मेज पर रख जाय । उसे अन्दर के कमरे में आने की मनाही थी।

"उन्हीं दिनों मैंने उन लोगों को इत्तला दी जिन्हें मेरे जाने का सारा इंतजाम करना था। तारीख वगैरा का सब फैसला हो गया और दाढ़ी रखने के चालीसवें दिन,रात को आठ बजे एक मौलवी के भेस में मैं घर से निकल कर, मोटर में,कलकत्ते से चालीस मील के फासले पर, एक रेलवे स्टेशन पर पहुंचा और पेशावर तक का दूसरे दर्जे का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया । (बोस बाबू ने स्टेशन का नाम तो बताया था, मगर याद नहीं रहा।) उस रात का सफर खैरियत से कटा । दूसरे दिन उस डब्बे में एक फौजी सिख आया और चूंकि हम दो ही वहां थे, आपस में बातचीत करना जरूरी हो गया ।

"बातों-बातों में फौजी सरदार ने मेरे वतन की बाबत पूछा और सफर के मकसद के बारे में भी दरयाफ्त किया। मैंने उसको बताया कि मेरा नाम जियाउद्दीन है, लखनऊ का रहने वाला हूं, बीमा कम्पनी का आरगनाइजर हूं और दौरे के लिए रावलपिंडी जा रहा हूं । दिन का सफर उसके साथ ही तय हुआ। रास्ते में जब कोई बड़ा स्टेशन आता तो पढ़ने का बहाना करके मैं अखबार मुंह के आगे रख लेता ताकि कोई पहचान न ले।"

बीच में टोकते हुए मैंने पूछा—"उस वक्त आपकी पोशाक क्या थी,

जिससे इतने लम्बे सफर में आपको किसीने भी पहचाना नहीं।"

"उस वक्त मैंने तंग पायजामा, पम्प शू, शेरवानी और तुर्की टोपी पहन रखी थी। उस पोशाक में और बढ़ी हुई दाढ़ी की वजह से उस वक्त किसीका मुझे पहचानना मुश्किल था। ऐसा मालम होता था कि युक्तप्रान्त की किसी जगह का मौलवी हूं।

"तमाम रास्ते में कोई ऐसा वाकया नहीं हुआ जो सुनाने के काविल हो। १७ जनवरी की रात को मैं पेशावर पहुंचा। स्टेशन पर मोटर आई हुई थी। उस पर सवार हो कर हम मुकर्रर जगह पर जा पहुंचे।"

बोस बाबू ने किसीका नाम नहीं बताया और मैंने पूछा भी नहीं। बाद में रहमतखां ने मुझे सब नाम बता दिये।

पेशावर पहुंचने के बाद का हाल बताते हुए बोस बाबू ने कहना शुरू किया किया—"पेशावर में मुझे दो दिन ठहरना पड़ा, क्योंकि मेरे दोस्तों को काबुल के सफर का इंतजाम करना था। मेरे पेशावर में होने की किसी को कानोंकान खबर न लगी। १९ जनवरी की सुबह मुझे पठानी कपड़े दिये गये। उस लिबास में मैं, रहमतखां और एक दोस्त के साथ मोटर में बैठ कर पेशावर से चल दिया। हम तीनों के अलावा मोटर चलाने वाला एक ड्राइवर भी था। शहर से निकल कर हम उस सड़क पर हो लिये, जो जमरुद को जाती थी। जमरुद के किले से थोड़ी दूर इधर एक सड़क दूसरी तरफ जाती थी, उसी पर हम चल दिये। आखिर हम गड़ी नामके एक छोटे-से गांव में पहुंचे, जहां हमने सारी रात गुजारी। सुबह मैं, रहमतखां और दो और पठानों के साथ, जिन्होंने हिफाजत के लिए बन्दुकें ले ली थीं, काबुल को पैदल चल पड़ा। पेशावर से जो दोस्त साथ आये थे, वे वापिस चले गये। मुझे मेरे दोस्तों ने पहले ही समझा दिया था कि मैं अपनेको गूंगा और बहरा बना लूं और पागल जैसी

हरकतें करूं। तमाम रास्ते में जब कभी किसी ने बातचीत करने की कोशिश की, तो रहमतखां ने मुझे गूंगा और बहरा बता कर खामोश कर दिया।

"आखिर शाम के वक्त हम हिन्दुस्तान की हद पार कर आजाद कबीलों के एक छोटे-से गांव में जा पहुंचे। यहां पर जियारत की एक मशहूर जगह है, जिसे अड्डा शरीफ कहते हैं। वहां पर एक पीर बाबा थे, जिन्होंने हमारे लिए सब इंतजाम कर रखा था। रास्ता पहाड़ी होने की वजह से हम बहुत थक गये थ। वह रात हमने पीर बाबा की मसजिद में गुजारी।

"अगले दिन सुबह जब हम उठे तो थकावट दूर नहीं हुई थी; मगर वहांसे चलना जरूरी था। नाश्ता करके हमने सफर शुरू किया। जो दो आदमी हमारी हिफाजत के लिए गड़ी से आये थे, वे वापिस चले गए और तीन नये आदमी बन्दूक लेकर हमारे साथ चले। रास्ता बहुत मुश्किल था, इसलिए, उस दिन पहले दिन से कम मंजिल तय हुई। रात को सात बजे हम लालपुरा पहुंचे। वहां पर पहले से ही इंतजाम पक्का था। रात बड़े आराम से कटी। हम इतने थके हुए थे कि लेटते ही नींद आ गई। लालपुरा एक छोटा-सा गांव है, जहां काबुल दरिया बहता है। जिस आदमी ने हमारे लिए इंतजाम किया था, वह वहांका एक बड़ा खान था। अफगान सरकार में उसकी बड़ी इज्जत थी। लालपुरा में तो जैसे उसकी अपनी हुकूमत थी। चलते वक्त उसने हमे एक रुक्का दिया और कहा कि अगर रास्ते में कोई तंग करे तो यह रुक्का दिखा देना। इस रुक्के को दिखा देने पर तमाम अफगानिस्तान में कोई तकलीफ नहीं हो सकती। रुक्का फारसी में था और उसमें लिखा था कि जियाउद्दीन और रहमतखां आजाद कबीले

बाशिन्दे हैं। मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूं। इस वक्त ये सखी
हब की जियारत को जा रहे हैं।"

"आपने यह रुक्का उस सिपाही को नहीं दिखाया जिसने आपको
ा किया था?" मैंने पूछा।

बोस बाबू ने उत्तर दिया—"दिखाया था और इसीलिए तो उसने
भी ज्यादा सख्ती नहीं की। पहले वह बहुत गरम था, रुक्का देख
र नरम हुआ। यह बात उस दिन हुई, जिस दिन घड़ी देनी पड़ी थी।"

: ७ :

सरहद के पार

बोस बाबू ने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा—"चलने की तैयारी की गई, मगर मेरे लिए चलना मुश्किल था। चले बिन गुजारा भी नहीं था। सब इन्तजाम मुकम्मिल था। हिफाजत के लि दो आदमी बन्दूक लिये हमारे साथ थे। चन्द मील चलने के बा हम दरिया के किनारे पहुंचे। उसे पार करने के लिए कोई किश्त नहीं थी। वहांके लोग मशकों में हवा भर कर और उन्हें आपस बांध कर एक नाव-सी बना लेते हैं और उसी पर बैठ कर दरिया पा करते हैं। इसे वे 'जाला' कहते हैं। पहले तो मुझे इस तरह दरि पार करना बहुत खतरनाक मालूम हुआ, पर बाद में सबको ऐसा कर देख हिम्मत बंधी। दरिया के उस पार अफगान हुकूमत थी। व हथियार लेकर सफर करना मना था, इसलिए जो हिफाजती हम साथ आये थे, वे वापिस चले गए। मैं रहमतखां के साथ मशकों सवार होकर, दरिया की दूसरी तरफ पहुंचा। उस वक्त हम ठका पांच-सात मील काबुल की तरफ आगये थे। ठका एक छोटा-सा

गांव है जो पेशावर से करीब ५० मील दूर है। यहां काबुल से आने-जाने वाले मुसाफिरों को पासपोर्ट दिखाना पड़ता है। तमाम माल और असबाब की तलाशी भी देनी पड़ती है। हमें बताया गया था कि पेशावर और ठका के बीच तीन बार पासपोर्ट देखा जाता है। इसी मुसीबत से बचने के लिए हमने दरिया पार करने का इंतजाम किया था।

"सड़क के नजदीक जहां हम पहुंचे, वहां चन्द बड़े-बड़े दरख्तों का एक झुरमुट था और पास ही एक छोटा-सा कुआं था। यह स्थान झुंघी के नाम से मशहूर हैं। मैं तो लारी के रुकने की इन्तजार करता-करता लेट गया और रहमतखां काबुल को जाने वाली लारी को ठहराने का इशारा करता रहा। थकावट की वजह से मुझे नींद आ गई। जब रहमतखां ने मुझे जगाया तो शाम हो चुकी थी और एक ट्रक सामने खड़ी थी।

"मुझे उस ट्रक में बैठने के लिए कहा गया। बैठने की जगह पर संदूक पड़े थे। मैं सोच ही रहा था कि कहां बैठूं कि क्लीनर चिल्लाया—'क्या सोचते हो, ऊपर चढ़ जाओ। रहमतखां ने मेरी मदद करते हुए एक सन्दूक पर मुझे बैठाया। मेरा खयाल है कि हम जिस सन्दूक पर बैठे थे, वह ग्यारह-बारह फुट ऊंचा था। सड़क के किनारे जो दरख्त थे उनकी टहनियां इतनी झुकी हुई थीं कि हमें अपने आपको बचाने के लिए लेट जाना पड़ता था। सर्दी का मौसम था, चारों तरफ खुला मैदान था और हवा भी तेज चल रही थी, यहांतक कि आंखोंका खोलना मुश्किल हो रहा था। इस पर हमारे पास कोई गरम कपड़ा नहीं था। रास्ते में मैंने रहमतखां से पूछा कि क्या कोई इससे अच्छी ट्रक नहीं मिल सकती थी? उसने कहा कि मैंने करीब पन्द्रह ट्रकों को खड़ा होने का इशारा किया। लेकिन, एक भी नहीं रुकी। अगर हम इस ट्रक पर भी सवार न होते तो शायद रात 'झुंघी' में ही गुजारनी पड़ती।

वह रात हमने ट्रक में ही बिताई। कई बार अपने को गरम करने के लिए हमने चाय ली। अगर चाय न मिलती तो हमारा जिन्दा रहना मुश्किल था। अगले दिन दोपहर को सख्त मुसीबत उठाने के बाद हम बुतखाक नाम की जगह पर पहुंचे। वहां पर पासपोर्ट देखे जाते हैं और ट्रक वालों की तलाशी भी होती है। वहां पर जब हमारे सफर करने का मकसद पूछा गया तो रहमतखां ने मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा—'यह मेरा बड़ा भाई है; बेचारा बहरा और गूंगा है। मैं इसे सखी साहब की जियारत के लिए ले जा रहा हूं। हम आजाद कबीले के रहनेवाले हैं। इसके बाद उसने लालपुरा वाले खान का रुक्का भी दिखाया। उसने हमसे कोई सवाल नहीं किया। हमने वहां चाय ली और फिर हम ट्रक पर सवार हो गए। तकरीबन चार बजे हम काबुल पहुंचे। वहां ट्रक वाले को हमने किराया दिया। अफगानी नोट हमने पेशावर से ही ले लिये थे।''

इतने में लड़की खाना ले आई। हम ने खाना खाया और फिर रेडियो की खबरें सुनीं।

: ८ :

निराशा का दौर

रेडियो की खबरें सुनने के बाद मैंने कहा—"सराय के हालात त
आपने कल बता दिये थे और आज हिन्दुस्तान से गायब होने की कहान
भी सुना दी। अब एक किस्सा और सुनना बाकी है; अगर एतरा
न हो तो वह भी सुना दें।"

"अब कौन-सा किस्सा सुनाना बाकी रह गया?"—बोस बा
ने पूछा।

"रहमतखां की जबानी मालूम हुआ था कि आपके ताल्लका
इटलीवालों से हो गये हैं। क्या आपने मास्को जाने का खयाल छो
दिया है? यदि नहीं, तो आपनें इटली वालों से ताल्लुकात क्यों औ
कैसे किये हैं?" मैंने अदब के साथ सवाल किया।

बोस बाबू बोले—"यह भी सुन लीजिये। मैंने मास्को जा
का खयाल नहीं छोड़ा है। जहां तक इटलीवालों का सवाल है
उनसे मैंने मजबूर हो कर ही ताल्लुकात पैदा किये हैं। मेरे दोस्तों
मेरे लिए रास्ते में तो अच्छा इंतजाम किया, मगर उन्होंने यह नहीं

सोचा कि काबुल पहुंच कर हम क्या करेंगे। बेचारा रहमतखां
इतना ही नावाकिफ है जितना मैं। काबुल में तो उसकी प
जबान भी किसी काम न आई। मालूम होता है कि मेरे दोस्त
उसे यह भी नहीं बताया कि काबुल में रूसी सफीर से किस
ताल्लुकात पैदा किये जा सकते हैं। मैं इस बात पर हैरान हूं
क्या उनमें से एक भी यह नहीं जानता था कि रूसी सफारत में
ही मुश्किल है? सफारत का दरवाजा हमेशा बन्द रहता है और ब
दरवाजे पर अफगान सरकार की तरफ से सिपाही का पहरा र
है। मेरा खयाल है कि उनको यह गलतफहमी रही कि का
पहुंचने पर रूसी सफीर को इतना बता देने पर ही कि मैं यहां
गया हूं और मास्को जाना चाहता हूं, जल्दी से मेरे लिए हवाई ज
का इंतजाम हो जायगा और मैं मास्को भिजवा दिया जाऊं
रहमतखां तो यह भी नहीं जानता था कि रूसी सफारत है किस जग

"खैर, काबुल पहुंचने के अगले दिन नाश्ता करके हम
सफारत की तलाश में निकले। किसीसे कुछ पूछ तो सकते

"हम काफी थक गये थे,"—सुभाष बाबू ने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा, "पेशावरी चप्पल से बर्फ पर चलने में काफी तकलीफ होती थी। इसलिए रूसी सफारत का पता लगाये बिना ही हम सराय में वापिस लौट आये। शाम को खाना खा कर हम आराम से सो गए और सुबह जब उठे तो धूप चढ़ चुकी थी। नाश्ता करके हम रूसी सफारत की तलाश में फिर निकले और जिस सड़क पर ईरान वग़ैरह की सफारतें थीं उसी पर चक्कर लगाने लगे। हमारा खयाल था कि जब और सब सफारतें उस सड़क पर हैं, तो रूसी सफारत भी कहीं आसपास ही होगी। हम दो घंटे तक टक्करें मारते रहे, लेकिन उस दिन भी कुछ मालूम नहीं हुआ। जब हम बिल्कुल नाउम्मीद हो गये तो एक जगह सुस्ताने के लिए बैठ गये। वहीं एक मकान पर हमने सुर्ख झंडा लहराता देखा। हम उसी ओर चल दिये। उसके पास पहुँचने पर हमें यकीन हो गया कि वही रूसी सफारत है। तमाम सफारतों के दरवाजे खुले होने पर भी उसका दरवाजा बन्द था और बाहर अफगान पुलिस का सिपाही खड़ा पहरा दे रहा था। कुछ फासले पर बैठ कर हम सोचने लगे कि अब क्या किया जाय। बग़ैर शनाख्त के हम सफारत में जा नहीं सकते थे और जो पोशाक हमने पहन रखी थी, उससे तो अन्दर जाना और भी मुश्किल था। इसी सोच विचार में शाम हो गई और हम किसी नतीजे पर नहीं पहुंचे सके। उस वक्त मैं अपने आपको और अपने साथियों को, जिन्होंने मेरे भेजने का बन्दोबस्त किया था, कोस रहा था। इतनी मुसीबत और तकलीफ उठा कर यहां तक पहुचे भी, मगर बेसूद। मेरे साथियों को ऐसा करना मुनासिब नहीं था। उन्हें मेरे साथ ऐसा आदमी भेजना चाहिए था, जो रूसियों से वाकिफ होता। अगर कोई ऐसा आदमी नहीं था तो उन्हें चाहिये था कि मेरे साथ आनेवाले

आदमी को रूसियों से ताल्लुकात पैदा करने का तरीका बता देते।

"आखिर मायूस हो कर हम सराय में वापिस आगये,"—बोस बाबू ने आगे बताते हुए कहा, "उस रात तो हमसे खाना भी नहीं खाया गया। हम काफी देर तक जागते रहे और आपस में सलाह करते रहे कि अब क्या किया जाय और किस तरह रूसी सफीर से मिला जाय। आखिर एक तरकीब सूझी। वह यह कि उसी जगह पर फिर बैठा जाय और जिस वक्त सफीर की मोटर अन्दर से निकले, उसे रोक कर बातचीत की जाय।

"अगले दिन खाना खा कर हम रूसी सफारत के नजदीक उसी जगह पर बैठ गये। बैठे-बैठे घंटों बीत गए। इस अर्से में कितनी ही मोटरें सफारत में गईं और बाहर आईं। हमारे लिए यह भी जानना मुश्किल था कि जो लोग मोटरों में आते-जाते हैं उनमें कोई रूसी है भी या नहीं। चार-साढ़ेचार बज चुके

उसको मेरी तरफ इशारा करके दिखा रहा है। बाद में रहमतखां ने मुझे सारी बातचीत सुनाई। रहमतखां ने उससे कहा था—'मैं सुभाषचन्द्र बोस को यहां लाया हूं। उनका मास्को जाने का इरादा है। आप उनकी मदद करें।'

"यह सुन कर रूसी सफीर ने पूछा था—'वह कहां हैं ?'

"रहमतखां ने मेरी तरफ इशारा किया था, जिस पर रूसी सफीर ने कहा था कि मैं किस तरह यकीन करूं कि वह सुभाषचन्द्र बोस ही हैं। बिना सबूत मैं किस तरह आपकी मदद कर सकता हूं। सफीर रहमतखां का जवाब जानने के लिए कुछ देर रुका था और जब कोई जवाब न मिला तो मोटर चल दी थी।

"रहमतखां से यह सब जान कर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि ऐसा अच्छा मौका हाथ से निकल गया। फारसी जबान न आने की वजह से ही वह जल्दी जवाब न दे सका था। मेरा खयाल है कि सफीर के सवाल का मतलब यह था कि आप लोगों को हमारे पास किसने भेजा है ? आपके पास उसकी कोई निशानी भी है कि नहीं ?

"लाचार हो हम सराय में वापिस चले आये। रहमतखां ने सलाह दी कि पेशावर खबर भेजी जाय, शायद वहांसे कोई ऐसा आदमी आजाय जिसके रूसियों से ताल्लुकात हों। पहले यह सलाह मुझे पसन्द न आई। सब से बड़ा सवाल तो यह था कि इत्तला किसके जरिये भेजी जाय। मुमकिन था कि हमारी इत्तला ठीक तौर पर पेशावर न पहुंचती। अगर ठीक से पहुंच भी जाय, तो यह कैसे कहा जा सकता था कि इंतजाम हो ही जायेगा। अगर मेरे दोस्त इंतजाम कर सकते, तो हमें वह दिन देखना नसीब ही क्यों होता ? फिर भी बाद में हमने पेशावर में अपने साथियों के पास खबर भेजने का इरादा कर लिया।

"अगले दिन रहमतखां किसी ड्राइवर को सन्देसा देने चला गया। लौटकर उसने बताया कि किसी एतवारी ड्राइवर के हाथ इत्तला भेज दी गई है। उसी दिन रहमतखां ने मुझे उस सिपाही की बावत भी बताया, जिसका सारा किस्सा सुना चुका हूं। यह एक और कड़ी मुसीबत थी।"

बोस बाबू ने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा—"पेशावर इत्तला तो भेज दी गई है, लेकिन क्या मालूम कब तक जवाब आये। इस वक्त तो रूसी सफीर ने जवाब दे ही दिया है। मालूम नहीं कि वह मुझे लेना ही नहीं चाहता था या सचमुच पहचानने की बात है। ऐसी हालत में जर्मनी और इटली से ताल्लुक पैदा करना ही मैंने मुनासिब समझा। अगर इस बीच कोई इन्तजाम हो गया तो अच्छा है; नहीं तो, मैं समझता हूं कि, जर्मनी और इटलीवाले मुझे बिना किसी हील-हुज्जत के ले लेंगे और मैं यहांसे जल्दी ही निकल जाऊंगा।

"जर्मन सफारत की जगह हमें न मालूम थी। उसे ढूंढ़ने की कोई जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि इटली की सफारत का हमें पता लग गया था और इन दोनोंमें कोई भेद नहीं था। इसलिए जरूरत तो इस बात की थी कि सफारत में मेरे मुतल्लिक इत्तला कैसे पहुंचाई जाय। मुझे उम्मीद थी कि वे लोग मेरा यहां पर होना सुनकर खुश होंगे और मेरी मदद करने से इनकार नहीं करेंगे। यूरोप जाने का एक ही रास्ता था, और वह मास्को होकर। इसलिए मैंने सोचा कि मौका मिल गया, तो मास्को में उतर पड़ूंगा, नहीं तो बर्लिन या रोम पहुंच कर रूसी सफारत के जरिये मास्को जाने का बन्दोवस्त करूंगा।

"उस रात हम बहुत देर तक सोचते रहे। रहमतखां ने भी यही मुनासिब समझा कि मेरा यहांसे जल्दी निकल जाना ही अच्छा है।"

: ९ :

आशा की रेखा

"अगले दिन रोजाना की तरह नाश्ता करके रहमतखां इटली के सफीर से मिलने के लिए गया। सफारत के दरवाजे पर अफगान सिपाही ने उसे रोका। मगर रहमतखां अपने आपको जापानी सफारत का चौकीदार बताकर अन्दर जाने में कामयाब हो गया। करूनी साहब (सफीर) से मिलकर उसने मेरे बारे में सब बातें बताईं। वह बहुत खुश हुआ और बोला—'मैं आज ही रोम और बर्लिन खबर भेजता हूं। पासपोर्ट का बन्दोबस्त भी मैं दो-चार दिन में ही कर दूंगा और जितनी जल्दी हो सकेगा बोस बाबू को यहांसे निकालने की कोशिश करूंगा।' इसके बाद करूनी साहब ने आइन्दा बातचीत के लिए हर थामस का मकान मुकर्रिर किया, क्योंकि रहमतखां ने बता दिया था कि सफारत में आने-जाने में कितनी मुश्किलें पड़ती हैं।

"चलते वक्त करूनी साहब ने कहा—'दो दिन में बर्लिन और रोम से जवाब आ जायगा। इसलिए आप हर थामस से तीसरे दिन मिलें। वहां पर हम आपके लिए एक बन्द लिफाफा छोड़ आयेंगे।' चलते हुए उसने

रहमतखां से कुछ मदद करने की भी बात कही। लेकिन, उसने रुपये-पैसे की मदद लेने से इनकार कर दिया।

"हर थामस एक जर्मन था जो अफगानिस्तान में कई जर्मन फर्मों का नुमाइन्दा बनकर आया था। वह कई किस्म का व्यापार करता था, इसलिए उसके दफ्तर में हर कोई बिना रोकटोक के आ-जा सकता था। असल में उस वक्त जितने जर्मन अफगानिस्तान में थे, सब-के-सब भेदिये थे। व्यापार तो अफगान सरकार और लोगों को धोखे में रखने के लिए करते थे।"

इसके बाद सुभाष बाबू ने मुझसे कहा–"आप तो यहां पर मुद्दत से रह रहे हैं। शायद आपके ताल्लुकात रूसी सफारत से हों। अगर ऐसा हो तो एक दफा मेरी मुलाकात रूसी सफीर से करा दीजिए।"

"इसमें तो कोई शक नहीं कि मैं काफी मुद्दत से यहां पर रह रहा हूं। मगर मैंने कभी किसी सफीर से ताल्लुकात बढ़ाने की कोशिश नहीं की। मैं काबुल में कोई सियासी काम नहीं करना चाहता। सुना है कि रूसी सफारतवाले बड़े शक्की मिजाज के हैं, फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं। अब आप आगए हैं, तो मैं कोशिश करूंगा कि उनसे ताल्लुकात पैदा कर सकूं।" मैंने कहा।

इस पर सुभाष बाबू ने कहा—"मेहरबानी करके रूसियों के साथ ताल्लुकात पैदा करने की कोशिश कीजिये। जर्मनी और इटलीवालों के इन्तजाम करने पर भी अगर रूसी मुझे लेने को तैयार हो जांय तो मैं जर्मनी या इटली नहीं जाऊंगा।"

सुभाष बाबू ने आगे कहा–"तीसरे दिन रहमतखां हर थामस के पास गया। उसने उसको एक बन्द लिफाफा दिया, जिसमें लिखा था–

मुबारिकबाद दी है। उन्होंने मुझे हुक्म दिया है कि मैं आपकी हर तरह से मदद करूं। मैं आपके लिए पासपोर्ट बनवाने की कोशिश कर रहा हूं और उम्मीद करता हूं कि चन्द दिनों में ही सब इन्तजाम मुकम्मिल हो जायगा।'

"अगले दिन मैंने इसका जवाब लिख कर भिजवा दिया। रहमतखां उसे हर थामस को दे आया। उसमें मैंने लिखा था:—

आपका पैगाम मिला। पढ़कर खुशी हुई। आपके तसल्ली देने और हौसला बढ़ाने के लिए तहेदिल से मशकूर हूं। पासपोर्ट का जितनी जल्दी इन्तजाम हो सके करें, क्योंकि मेरे लिए ऐसी जगह पर और ऐसी हालत में ज्यादा दिन रहना खतरे से खाली नहीं है। रोम और बर्लिन के जिम्मेदार लोगों को उनकी मेहरबानी के लिए मेरी ओर से शुक्रिया भेज दें।"

रहमतखां ने मुझसे एक दिन कहा—"आज मैं बाजार जाना चाहता हूं; घर बैठे-बैठे तंग आ गया। उधर से ही हर थामस के पास भी जाऊंगा; मुमकिन है कि कोई नया संदेसा आया हो।"

बोस बाबू ने रहमतखां का बाजार जाना ठीक नहीं समझा और कहा—"आज तुम्हारा बाजार जाना ठीक नहीं है। उत्तमचंद ही हर थामस के पास हो आयंगे।"

मुझे भी रहमतखां का बाजार जाना ठीक न लगा; मैं बोला—"जिस सिपाही के डर से तुम सराय छोड़ कर यहां आये हो, अगर उसने

तुम्हें बाजार में घूमते देख लिया तो क्या होगा ? हर थामस के यहां मैं हो आऊंगा।"

रेडियो का व्यापारी होने के नाते मुझे इतना तो मालूम था कि काबुल में एक जर्मन फर्म रेडियो का व्यापार करती है, मगर यह पता नहीं था कि वह फर्म हर थामस की है। सब बातें मालूम हो जाने पर मैंने बोस बाबू के सामने यह सुझाव रखा कि क्यों न आगे से मेरी दूकान पर पैगाम आया-जाया करें, ताकि हर थामस के घर आने-जाने का झगड़ा कट जाय और हम रोजाना की मुसीबत से बच जायं ! इस इंतजाम में किसीको शक करने का भी मौका न मिलेगा।

"सलाह बड़ी अच्छी है," बोस बाबू ने कहा; "रहमतखां कहता है कि हर थामस का ड्राइवर एक हिन्दुस्तानी है और कुछ ऐसा खयाल है कि वह अंग्रेजों के लिए भेदिये का काम करता है, क्योंकि जब कभी रहमतखां हर थामस के यहां जाता है तो वह उसे घूर-घूर कर देखने लगता है।"

"मुझ पर तो कोई शक नहीं कर सकता," मैंने कहा; "तमाम काबुल जानता है कि मैं रेडियो का व्यापारी हूं।"

इसके बाद बोस बाबू ने एक रुक्का लिख कर लिफाफे में बंद किया और मुझे उसे हर थामस को दे आने को कहा। रुक्के में लिखा था—

'सराय में खतरा देख कर हम अपने एक दोस्त के मकान में चले आये हैं। उनकी दूकान दरिया के पास नई बिल्डिंगमें है। वह चीनी के बर्तनों और रेडियो का व्यापारी है। उम्मीद है कि आपने अबतक पासपोर्ट का इन्तजाम कर लिया होगा। जल्दी इत्तला देने की मेहरबानी करें और अगर कोई तकलीफ न हो तो आगे से पैगाम मेरे

दोस्त की दूकान पर पहुंचा दिया करें। हर थामस के पास हर रोज आदमी भेजना मैं ठीक नहीं समझता।"

रुक्का ले कर मैंने बोस बाबू को रोज की तरह कमरे में बन्द करके ताला लगाया, चाबी बीबी को दी और दूकान पर चला आया। करीब १२ बजे मैं हर थामस के मकान पर गया, क्योंकि मिलने के लिए यही वक्त तय था।

हर थामस उस वक्त अपनी दूकान से निकल कर ऊपर खाना खाने के लिए जा रहा था। मैं उसे पहचानता नहीं था, इसलिए मैंने उससे जाकर कहा—"मैं हर थामस से एक जरुरी काम के लिए मिलने आया हूं।" वह मुझे अपने दफ्तर में ले गया और बोला—"मेरा ही नाम हर थामस है, कहिए क्या काम है?" मैंने उसे रुक्का दिया और कहा कि अगर बोस बाबू के लिए कोई पैगाम हो तो बता दीजिये। उसके पास कोई पैगाम नहीं था।

दोपहर पीछे हाजी मेरी दूकान पर आया और बोस बाबू के बारे में पूछता हुआ बोला—"एक बार उनके दर्शन तो करा दो।" मेरा दिल तो नहीं करता था कि उसे बोस बाबू से मिलाऊं, मगर उसको कोरा जवाब भी नहीं दिया जा सकता था। क्योंकि उसको पता था कि बोस बाबू मेरे मकान में हैं। मैंने कहा—"मुझे मुलाकात कराने में क्या उजर हो सकता है, बशर्ते कि बोस बाबू राजी हो जायं। मैं उनसे पूछ कर कल जवाब दूंगा और अगर वह राजी हो गये तो तुम्हें साथ ले चलूंगा।"

शाम को जब मैं घर वापिस आया तो सुभाष बाबू चाय पी चुके थे। रात को सियासी मसलों पर बातचीत हुई और रेडियो पर खबरें सुनी गईं। इत्तफाक से सुई घुमाते-घुमाते एक बार कलकत्ते

के स्टेशन पर रुक गई। उस वक्त बंगाली गाना हो रहा था। दो चार मिनट ही वह गाना चला कि बोस बाबू ने सुई घुमाने के लिए कहा।

"गाना तो अच्छा हो रहा है," मैंने कहा। "हां, गाना तो अच्छा है; मगर यहां मेरे सिवा और कोई यह जबान नहीं जानता। इसलिए मुमकिन है कि इससे किसी पड़ोसी को शक हो जाय।" बोस बाबू बोले।

इसके बाद मैंने उन्हें हाजी से मिलने की बात बताई। सुभाष बाबू काबुल में किसीसे मिलना नहीं चाहते थे, लेकिन जब मैंने हाजी की सारी बातें बताईं तो वह उससे मिलने के लिए राजी हो गये।

: १० :

एक नई मुसीबत

६ फरवरी को एक ऐसी बात हो गई, जिसकी वजह से हमें काफी मुसीबत उठानी पड़ी। सुबह जब हम चाय पी रहे थे, नीचे की मंजिल का हमारा पड़ोसी ऊपर छत पर आगया। उसे उसी कमरे के आगे वाले बरामदे में से होकर गुजरना पड़ा, जिसमें हम बैठे थे। उस पर हमारी नजर तब पड़ी, जब उसने हमें अच्छी तरह देख लिया। गलती मेरी छोटी लड़की की थी। वैसे तो हम बोस बाबू के कमरे का दरवाजा हमेशा बन्द रखते थे, मगर उस दिन लड़की चाय देकर गई तो दरवाजा बन्द करना भूल गई और हमें भी इसका खयाल न रहा।

यहां पर हम अपने पड़ोसी को 'आर' के नाम से पुकारेंगे। बोस बाबू को देख कर 'आर' का चेहरा एकदम पीला पड़ गया, जिससे मुझे यकीन हो गया कि उसने सुभाष बाबू को पहचान लिया है। बोस बाबू को भी खतरा महसूस हुआ। "बड़ी सख्त गलती हुई कि दरवाजा खुला रह गया," वह बोले।

मैं 'आर' को अच्छी तरह जानता था और मुझे यकीन था कि

आये हैं। उम्मीद है दो-चार दिन में चले जायंगे। बाकी रहा आपकी बीवी का एतराज, सो वह इस मकान में अकेली तो रहती नहीं! आख़िर मेरे भी तो बीवी-बच्चे हैं!"

'आर' ने दबी जबान से कहा—"भाई, नाराज क्यों होते हो? इसीलिए तो मैं सच्ची बात नहीं बताना चाहता था। इस वक्त मेरी जो हालत है, उसमें अगर मैं यहां एक दिन भी और ठहरा तो उम्मीद नहीं कि जिन्दा बचूंगा। किराये की आप फिक्र न करें, मेरे हिस्से का जो आधा किराया है वह मैं दे जाया करूंगा।"

थोड़ी ही देर बाद 'आर' ने पन्द्रह-बीस मजदूर लगा कर मिनटों में मकान खाली कर दिया। इससे मुझे पहले तो खुशी हुई; लेकिन, फिर डर लगा कि कहीं उसने यह काम हमें फंसाने के लिए तो नहीं किया है। इसलिए जब वह चला गया तो हमने तय किया कि बोस बाबू और रहमतखां कुछ दिनों के लिए किसी सराय में चले जायं और अगर दो-तीन दिन में कोई खास बात न हो तो फिर घर चले आयें। मैं चाहता था कि अगर 'आर' कोई बदमाशी करे भी तो उससे बोस बाबू और रहमतखां को कोई नुकसान न पहुंचे।

मैंने अमरनाथ को रहमतखां के साथ किसी सराय में कोठरी तलाश करने के लिए भेजा। दो-तीन सरायों में घूमने के बाद उन्होंने एक कोठरी किराये पर तय कर ली और थोड़ा-सा ज़रूरी सामान लेकर बोस बाबू और रहमतखां सराय में चले गये।

'आर' के मकान छोड़ देने के दूसरे दिन उसके कुछ दोस्त मेरे पास आये और उसके मकान छोड़ने के बारे में पूछने लगे। मैंने उनसे कह दिया कि उसीसे जा कर पूछो, मुझे कुछ भी मालूम नहीं।

उस दिन रहमतखां दूकान पर तीन बार यह मालूम करने आया

कि सफारत से कोई पैगाम तो नहीं आया। मैंने उससे कह दिया कि अगर कोई पैगाम आयगा, तो अमरनाथ के हाथ भिजवा दूंगा।

शाम को जब मैं घर लौटा तो मालूम हुआ कि 'आर' की बीवी आई थी और बातों बातों में उसने मेहमानों के बारे में पूछा था।

मेरी बीवी ने जवाब देते हुए कहा—"तुम लोगों का रवैया देख कर वे नाराज हो गये और अपने गांव चले गये। तुम्हारे खाविन्द को ऐसा नहीं करना चाहिए था।"

'आर' की बीवी ने हैरान होकर पूछा—"आखिर उन्होंने ऐसी क्या बात कह दी थी जो तुम इतना गुस्सा कर रही हो ?"

"और क्या कहता ?" मेरी बीवी ने कहा; "वह हमारी जितनी बदनामी कर सकता था उसने की। उसने कहा कि मेरी औरत ऐसे मकान में नहीं रह सकती, जहां दो मेहमान दिन भर घर में रहते हैं।'

"बहनजी, परमात्मा की कसम जो मैंने उनसे यह कहा हो,"—'आर' की बीवी ने उत्तर दिया; "यह उन्होंने अपनी तरफ से कह होगा। मुझे तो मालूम भी नहीं कि आपके पास दिन में दो मेहमा रहते हैं।"

"अगर तुम्हें मेरी बात पर एतबार नहीं तो घर जाकर पूछ लेना। मेरी बीवी ने कहा।

"मैं जरूर जाकर पूछूंगी",—'आर' की बीवी बोली; "अगर उन ऐसी गलती हो गई है, तो मैं आपसे माफी मांगती हूं।"

'आर' की बीवी ने कुछ इधर-उधर की बातों के बाद फिर पूछा—"आपको यह तो मालूम ही होगा कि कलकत्ते से एक बड़ा आदमी गाय हो गया है ? उसका नाम मैं भूल गई हूं।"

"रेडियो पर सुना तो था। इस तरह की बातें तो हर रो

"अगर इटलीवालों की तरफ से आखिरी पैगाम नहीं आता, तो मैं 'एम' के साथ जरूर चल देता।" बोस बाबू ने कहा, "अब चूंकि इटली वालों की तरफ से कारंवाई शुरू हो गई है, इसलिए उनके साथ जाने मे इन्कार नहीं करना चाहिए। 'एम' के साथ जाने में रास्ते की दिक्कतों के अलावा यह भी खतरा है कि सरहद तक पहुंचने से पहले ही कहीं पकड़ न लिया जाऊं।"

बोस बाबू ने कुछ रुक कर फिर कहा—"आप दोनों का खयाल है कि इटली या जर्मनीवाले मुझे मास्को नहीं जाने देंगे। इस किस्म के शक को आप अपने दिल में जगह न दें। और, एक बात तो आप भूल ही गए। यह तो आप जानते हैं कि रूसी सफीर ने मुझे लेने से इन्कार कर दिया है, और साथ ही रूसी हुकूमत ने मुझे रूस होकर जाने की इजाजत नहीं दी है। मुमकिन है कि वे मुझे पसन्द न करते हों और अपने मुल्क में रहने की इजाजत न देना चाहते हों। मैं बर्लिन या रोम में रूसी सफारत से खुद मालूम करूंगा कि रूसी हुकूमत मुझे लेने के लिए तैयार है या नहीं। अगर वह तैयार हुई, तब तो मेरे जाने का बन्दोबस्त हो ही जायगा। नहीं तो मजबूरन बर्लिन या रोम में रह कर ही कुछ सोचना पड़ेगा।"

रहमतखां को बोस बाबू की बात पसन्द आई, इसलिए मैंने कहा—"अब जब आप दोनों ने इटलीवालों के साथ जाने का फैसला कर लिया है, तो 'एम' को भी कुछ जवाब दे देना चाहिए। मेरा अपना खयाल यह है कि रहमतखां उससे बचता रहे और मैं उससे कह दूं कि आने वाला आदमी सख्त बीमार पड़ गया है, इसलिए रहमतखां भी वापिस चला गया है।"

"यह जवाब ठीक है।" बोस बाबू ने कहा। "अब जाने की तैयारी करनी चाहिए। मेरे पास तो कोई कपड़ा नहीं है। दो सूट बनवा दीजिए और जब तक जल्दी साहब की बीबी फोटो के बारे में बताने आये, तो

उसे मेरा रुक्का भी दे दीजिएगा। उससे पूछना है कि सफर में जिन चीजों की जरूरत होगी, उनका इन्तजाम मुझे खुद करना है या वे लोग करेंगे।"

सुबह रुक्का लेकर मैं दूकान पर गया। उसमें बोस बाबू ने लिखा था:—

"उम्मीद है कि मेरा फोटो ठीक आ गया होगा। अब चूंकि सफर की तैयारी करनी है, इसलिए मेहरबानी करके यह बतायें कि सफर के लिए जरूरी सामान का मैं खुद बन्दोबस्त करूं या आप करेंगे।"

तकरीबन ग्यारह बजे करूनी साहब की बीवी मेरी दूकान पर आई। उस वक्त जीवनलाल भी दूकान पर मौजूद था। करूनी साहब की बीवी ने मुझे एक रुक्का दिया और कहा कि बोस बाबू का फोटो ठीक आगया है। जब वह जाने लगी, तो मैंने उसे बोस बाबू का रुक्का दे दिया।

करूनी साहब की बीवी जो रुक्का दे गई थी उसमें लिखा था:—

"आपका फोटो साफ आया है। पास-पोर्ट भी तैयार हो गया है। हरकारे के आने की इन्तजार है। उम्मीद है कि तीन-चार दिन में आ जायगा। उसके आते ही आपको खबर भेज दी जायगी। आप जाने की तैयारी शुरू कर दें।"

अगले दिन करूनी साहब की बीवी बोस बाबू के खत के जवाब में एक परचा दे गई, जिसमें लिखा था—"बिस्तर का इंतजाम हमारी तरफ से होगा, बाकी चीजों का बन्दोबस्त आप खुद कर लें।"

सूट का कपड़ा पसन्द कराने के लिए मैं उसी दिन बाजार से पांच-सात नमूने ले आया। उनमें से दो को बोस बाबू ने पसन्द किया। सूट कैसे सिले, यह एक टेढ़ा सवाल था। न तो मैं दर्जी को घर पर ला सकता था और न बोस बाबू का दर्जी की दूकान पर जाना ही मुनासिब था। मैंने हाजी से दर्जी के बारे में बात की। उसने कहा—"मैं एक दर्जी को जानता हूं। वह मेरे तमाम कपड़े सीता है। बोस बाबू को मेरे

घर भेज दो। दर्जी वहां आ जायगा। उम्मीद है कि उनके जाने से पहले सूट सिल जायंगे।"

दूसरे दिन बोस बाबू मेरे साथ बाजार गए और एक बजे हम हाजी के मकान पर पहुंचे। वहीं दर्जी बुलाया गया और उसने नाप वगैरह लेकर चार दिन में सूट देने का वायदा किया। सूट तो वह वायदे पर दे गया, मगर वास्कट न ला सका। इस पर हाजी की जर्मन बीवी ने कहा—"वास्कट तैयार हो जाने पर मैं उसे पार्सल से अपनी बहन के पास बर्लिन भेज दूंगी, आप उससे ले लीजिएगा।" बाद में उसने वह वास्कट अपने वायदे के मुताबिक बर्लिन पार्सल से भेज दी।

दो दिन में सारा जरूरी सामान बाजार से खरीद लिया गया। मगर सवाल यह था कि सामान जाय कैसे। इसलिए बोस बाबू ने एक रुक्का लिख कर रहमतखां को इटालियन सफारत ले जाने के लिए दिया। उसमें लिखा था —

"सफर के लिए जो सामान मैं जरूरी समझता था, उसे मैंने खरीद लिया है। यह सामान किस तरह जायगा ? मैं इसे अपने साथ लाऊं या आप कोई और इन्तजाम करेंगे ?"

जिस दिन रहमतखां बोस बाबू का रुक्का दे आया था, उसके अगले दिन कर्स्नी साहब और उनकी बीबी दोनों मेरी दूकान पर आए। उन्होंने मुझे एक बन्द लिफाफा दिया, जिसमें लिखा था—

"जो सामान आपने अपने लिए खरीदा है उसे एक सूट केस में बन्द करके दूकान पर भिजवा दें। कल १६ मार्च को दोपहर को २ बजे बाद हमारा आदमी जाकर ले आयगा। आपको यहां से १८ मार्च को चलना है। इसलिए आप अपने साथी को लेकर १७ मार्च को क्रोस्नी साहब (नायब वजीर) के घर नं०···

पर, जो शहरे नौ में हैं, पहुंच जायं। वहीं पर खाने का इन्तजाम होगा। बाकी बातें वहीं होंगी।"

जिस वक्त मुझे करूनी साहब का पैगाम मिला, बोस बाबू हाजी के घर पर थे। मैं खुशी-खुशी वहां गया और बोस बाबू से बोला—

"कुछ खिलाइए तो खुशखबरी सुनाऊं।"

"अफसोस," बोस बाबू बोले, "मेरे पास आपको खिलाने के लिए कुछ भी नहीं है। बस, यह केक है।" यह कहकर उन्होंने केक का एक टुकड़ा उठाकर मुझे दिया। और पूछने लगे कि क्या बात है? मैंने उसे लेते हुए कहा कि आपके सख्ती और परेशानी के दिन खत्म हो रहे हैं, और करूनी साहब का रुक्का उनके हाथों में दे दिया।

पैगाम पढ़कर बोस बाबू ने कहा— "मैं आपसे इतना खुश हूं कि पूछिये मत। जो सेवा और देशभक्ति आपने इस मुल्क में दिखलाई है, वह दाद के काबिल है। परमात्मा वह मौका जल्दी लाय, जब हम हिन्दुस्तान की गुलामी दूर कर सकें। इस वक्त मैं इससे ज्यादा और कुछ नहीं कह सकता।"

"मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है। परमात्मा का लाख-लाख शुक्र है कि आपके यहां होते हुए कोई ऐसी बात नहीं हुई, जिससे आपके सियासी मकसद के पूरा होने में रुकावट पड़ती। अब तक तो आपको अपने मकसद में कामयाबी ही हुई है और आगे भी हो,—यही मेरी परमात्मा से दुआ है। अगर मुझसे या मेरे बच्चों से कोई गलती हुई हो, तो माफ कीजियेगा।" यह कहकर मैं बोस बाबू के पांव की धूल माथे पर लगाने के लिए झुका। उन्होंने मुझे हाथ से पकड़ कर गले लगा लिया और हंसकर कहा—"मैं तुम्हारी लड़की निम्मो (निर्मला) से जरूर नाराज हूं। खाना खिलाते वक्त वह बिना पूछे फुलके

दे जाया करती थी; दो की भूख होती थी, तो पांच खिला देती थी।"

शाम को जब हम हाजी के घर से चलने लगे, तो उसने १७ मार्च को दिन के खाने और शाम की चाय के लिए कहा। बोस बाबू ने इसे मंजूर कर लिया।

१६ मार्च को सारा सामान सूटकेस में बन्द करके दूकान पर भिजवा दिया गया और रहमतखां करोशनी साहब के मकान का नम्बर देखने के लिए गया। शाम को मालूम हुआ कि वह मकान देख आया है।

इस हाते में 'एम' मेरे आनेवाले दोस्त के बारे में पूछने के लिए दो-तीन बार दूकान पर आया। हर बार मैंने उससे कह दिया कि वह अभी नहीं आया है। इन दिनों रहमतखां और कभी-कभी बोस बाबू भी मेरी दूकान पर आ जाते थे। मैं चाहता था कि 'एम' का मेरी दूकान पर आना-जाना बन्द हो जाय। मैं उससे कह चुका था कि रहमतखां वापिस चला गया है। ख्याल था कि अगर उसने रहमतखां को मेरी दूकान पर देख लिया, तो काम बिगड़ जायगा।

अगली दफा जब वह आया तो मैंने कहा—"आज इत्तला आई है कि बुखार ज्यादा होने की वजह से वह वापिस हिन्दुस्तान जाना चाहता है। इसलिए उसके आने का कोई इन्तजाम न किया जाय। चप्पल, लुंगी और जितने रुपये बचे हों, वे सब मेहरबानी करके मुझे दे दो।"

यह मैं अच्छी तरह जानता था कि उससे रुपये मिलने मुश्किल हैं। मगर असली मकसद तो यह था कि उसका मेरी दूकान पर आना बन्द हो जाय। मकसद पूरा हुआ और उसके बाद छः मास तक भी उसने अपनी शक्ल न दिखाई।

ठीक दो बजे रहमती साहब की बीबी दूकान पर आई और सूटकेस लेकर चली गई।

: १७ :

मि० करोटना के रूप में

१६ मार्च की रात आखिरी थी, जो बोस बाबू ने मेरे घर पर गुजारी। उस रात उन्होंने दो चिट्ठियां लिखी। एक अपने बड़े भाई के नाम, जिसमें उन्होंने काबुल पहुंचने और बर्लिन जाने के हालात लिखे और साथ में बहुत-सी घरेलू बातें भी लिखी। उसी खत में उन्होंने अपनी माताजी से माफी मांगी और लिखा था कि मुमकिन है कि इस जिन्दगी में मैं आपके दुबारा दर्शन न कर सकूं।

दूसरी चिट्ठी उन्होंने अपने एक दोस्त को लिखी, जिसमें काबुल पहुंचने तक के हालात थे। बाद में मालूम हुआ कि उसने चिट्ठी लेने से इन्कार कर दिया था।

ये दोनों चिट्ठियां उन्होंने रहमतखां को दे दीं और १७ मार्च की सुबह वह नाश्ता करके और मेरे छोटे बच्चों को प्यार करके ११ बजे घर से चल दिये। सारे दिन वह हाजी के घर में रहे। हाजी की बीबी ने अपनी बहिन के लिए कुछ सामान और एक चिट्ठी भी दी।

शाम को करीब ८ बजे जब काफी अंधेरा हो गया तो एक किराये की गाड़ी लेकर हम तीनों करोशनी साहब के मकान की तरफ

चले। रास्ते में बोस बाबू ने हैट मुझे दे दिया और कराकुली की टोपी पहन ली। मैं बोस बाबू को पहुंचा कर वापिस आ गया। चलते वक्त उन्होंने कहा—"आगे होशियारी से काम करना। र्बलिन पहुंच कर खबर भेजूंगा।"

बोस बाबू से सियासी मसलों पर काफी बातचीत हुआ करती थीं उन सबकी चर्चा यहां नहीं की जा सकती। फिर भी एक बात लिखना जरूरी है। वह यह कि बातचीत में अपने मुल्क के नाम के बारे में भी कई बार चर्चा हुआ करती थी। वह कहा करते थे कि हिन्दुस्तान, भारतवर्ष, इण्डिया वगैरा नाम ठीक नहीं हैं। कोई नया ही नाम होना चाहिए। आखिर में उन्होंने यह फैसला दिया कि हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद उसका नाम "आजाद हिन्द" रखा जाय। उससे पता चलता है कि मलाया पहुंचने के बाद उन्होंने जो कुछ किया, वह उनके दिमाग में तभी से मौजूद था।

जब बोस बाबू चिट्ठियां लिख रहे थे, तब मैंने उनसे अर्ज की कि आपके पास वक्त तो बहुत कम है, लेकिन मुमकिन हो, तो आप हिन्दुस्तान से गायब होकर यहां आने और यहां से र्बलिन या मास्को पहुंचने के मुकम्मिल हालात मुझे लिख कर भेजने की मेहरबानी जरूर करें। इस पर उन्होंने कहा कि अगर वक्त मिला तो मैं जरूर लिख कर भेज दूंगा।

× × ×

१८ मार्च को रहमतखां दस बजे मेरी दूकान पर आया। उससे मालूम हुआ कि ९ बजे सवेरे बोस बाबू दो जर्मन और एक इटालियन के साथ रवाना हो गए। इटलीवालों ने जो पासपोर्ट बोस बाबू को दिया था उसमें उनका नाम 'करोटना' लिखा था।

जो दो जर्मन बोस बाबू के साथ भेजे गए थे, उनमें से एक का नाम डाक्टर वेलर था। हाजी की जबानी मालूम हुआ कि वह आदमी बड़ा होशियार और चालाक था। कहा जाता है कि जर्मनों ने उस आदमी को इसलिए भेजा था कि उन्हें इस बात का खतरा था कि कहीं इटली वाले बोस बाबू को रोम में ही न रख लें।

करूनी साहब की बीवी से बाद में मालूम हुआ कि चारों आदमी एक मोटर में गए और उनका सामान दूसरी मोटर में। उसीसे यह भी मालूम हुआ कि बोस बाबू ने एक रात पुले-खुमरी में बिताई, जो रूसी हरहद के करीब है और जहां कपड़े का एक बड़ा कारखाना है। दूसरी रात उन्होंनें अफगानिस्तान की सरहद को पार कर रूसी मुल्क में बिताई। २० मार्च को वह रेल से मास्को की तरफ चल दिये। वहां से वह हवाई जहाज से बर्लिन पहुंच गय। जहां से कुछ दिनों बाद रोम जा सकेंगे। उसी दिन रहमतखां लारी से हिन्दुस्तान को वापिस रवाना हो गया।

कुछ दिन बाद जर्मन सफारत से एक रिसाला हाजी की मार्फत मुझे दिखाने के लिए भेजा गया।। उसके एक सफे पर ९–१० छोटे-छोटे फोटो थे। ये फोटो हिटलर, गोयरिंग, गोयबिल्स, रिबनट्राप, हिमलर वगैरह के थे। उन्हींके साथ एक फोटो बोस बाबू का भी था। सबके नीचे जर्मन जबान में कुछ लिखा हुआ था। वह रिसाला लेकर मैं हाजी की बीवी के पास यह जानने के लिए गया कि बोस बाबू की फोटो के नीचे क्या लिखा है? उसके नीचे लिखा था–"हिन्दुस्तान के बड़े सियासी नेता और इंडियन नेशनल कांग्रेस के पहले के सदर, जो कुछ दिन हुए छिप कर हिन्दुस्तान से गायब हो गए थे, २८ मार्च को सही-सलामत बर्लिन पहुंच गए।"

: १८ :

पूछ-ताछ

बोस बाबू के काबुल से निकल जाने के कुछ दिन बाद एक आदमी रास्ते में मिला और बोला—"मैं आपकी दूकान पर ही जा रहा था। आपसे एक जरूरी काम है।"

मैं यह बात सुनकर बड़ा हैरान हुआ और समझ न सका कि इसको मुझसे क्या काम हो सकता है? इस आदमी के बारे में यह मशहूर था कि वह अंग्रेजों का खुफिया है। वह अपने को बहुत बड़ा आदमी समझता था और अफगान बादशाह के यहां 'हाजिर बाशी' के रुतबे पर था। मैंने उससे पूछा—"कौन-सा ऐसा जरूरी काम है?"

"वह काम आपके बिना और कोई नहीं कर सकता। अगर कर दें, वो बड़ा अच्छा हो।"

"ऐसा कौन-सा काम है, जो मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता? मैं कोशिश करूंगा, अगर काम मेरे बस का हुआ।"

"आप कर सकते हैं, तभी तो मैं आपके पास आया हूं। यह

तो आप जानते हैं कि खान अल्लाह नवाजखां से, जो जर्मनी में अफगानिस्तान की तरफ से सफीर हैं, मेरे दोस्ताना ताल्लुकात हैं। आप शायद यह भी जानते होंगे कि हर सोमवार को वह आला हजरत 'बादशाह' से टेलीफोन पर बातें करते हैं।"

"मैं ये बातें नहीं जानता, मैं पहली ही बार आपसे सुन रहा हूं।"

"मुमकिन है कि आप न जानते हों, लेकिन काबुल में बहुत-से आदमियों को यह मालूम है। पिछले सोमवार को अल्लाह नवाजखां ने मेरे साथ भी टेलीफोन पर बातचीत की थी। उन्होंने कहा था कि कुछ मुद्दत हुई हिन्दुस्तान से दो हिंदू भाग कर अफगानिस्तान आये हैं। इस वक्त वे हिन्दू गुजर में किसी हिंदू के पास रहते हैं। उन्हें बर्लिन लाने के लिए जर्मन सफारत बड़ी कोशिश कर रहा है। मुझे इन बातों की जांच करने के लिए कहा गया है।"

"सफीर साहब ने आपको उन दोनों के नाम तो बताये होंगे?"

"नाम तो बताये थे और मैंने नोटबुक में लिखे भी थे; लेकिन, इस वक्त नोटबुक मेरे पास नहीं है। एक का नाम 'चन्दर बस' जैसा है।"

"क्या सुभाषचंन्द्र बोस तो नहीं है?"

"हां, हां, यही नाम है।"

"यह तो हिन्दुस्तान का नामी लीडर है। बंगाल का रहनेवाला है। उसको गायब हुए दो महीने से भी ऊपर हो गये। आपको कहीं गलतफहमी तो नहीं हुई? मुझे तो यकीन नहीं आता कि एक नामी लीडर और वह भी बंगाली, जो अफगानिस्तान की जबान नहीं जानता, कलकत्ता से भाग कर किसी तरह काबुल आ सकता है। यह काम हंसी-खेल का नहीं है।"

"मैं क्या जानूं; जिस तरह सुना, आप से कह दिया। मेहरबानी करके यह मालूम कर दें कि वह किसके पास रहता है।"

"बाशी साहब, आप भी कमाल करते हैं। आपने यह तो बताय नहीं कि जिस हिन्दू के पास ये दोनों हिन्दुस्तानी रहते हैं, वह दाखला ह या खारजा। जब मियां अल्लाह नवाजखां को इतना मालूम हुआ है तो उन्हें यह भी मालूम होगा कि वे किस हिंदू के पास रहते हैं।'

"नहीं, उन्होंने यह नहीं बताया। फिर भी, पता लगाना कुछ मुश्किल नहीं है। अगर मैं हिंदू होता तो, हिन्दू गुजर में रह कर जरू मालूम कर लेता। मगर मैं तो वहां पर जा भी नहीं सकता।"

"बाशी साहब, आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं दूसरे मुल्क क रहने वाला हूं। सुबह दूकान पर आता हूं, शाम को घर जाता हूं। भला मैं इन बातों को कैसे मालूम कर सकता हूं! यह सियासी काम है, इससे मैं दूर ही रहता हूं। अगर यह काम आप किसी काबुली के सिपुर्द करें, तो अच्छा हो। खबर लगने पर मुझे भी बता दीजिएगा, ताकि मैं भी उनके दर्शन कर सकूं।"

"अगर यह काम आपसे नहीं हो सकता, तो कोई भी नहीं कर सकता। मेरे लिए तो यह जानना भी मुश्किल है कि वे यहां पर हैं भी या नहीं और आपको दर्शनों की पड़ी है।" बाशी ने कहा।

मैं मन ही मन सोच रहा था कि मियां अल्लाह नवाज खां की बात तो मनगढ़न्त है, इसको तो किसी और ही आदमी ने पता लगाने के लिए कहा होगा। मैंने कहा—"बाशी साहब मुझे अफसोस है कि मैं इस बारे में आपकी क़ोई खिदमत नहीं कर सकता। और कोई खिदमत हो तो कहिएगा। हां, आपने दूसरे आदमी का नाम तो बताया ही नहीं।"

"इस वक्त तो मुझे याद नहीं, कल बताऊंगा। आप इस काम को जरूर कर दें।" बाशी ने कहा।

मैंने सलाम करके उससे रुखसत ली और मन ही मन में सोचा कि हिन्दुस्तान की सरकार को तब होश आया, जब पंछी उड़ चुका।

अगले दिन बाशी साहब बाजार में इत्तफाक से मिल गये। उन्होंने दूसरे आदमी का नाम भी ठीक-ठीक बता दिया। नाम सुनते ही मेरे मुंह का रंग उड़ गया। मेरा खयाल था कि दूसरे आदमी का नाम सरकार को मालूम न होगा। बाशी साहब मेरी हालत भांप नहीं सके। मैंने भी अपने आपको जल्दी ही सम्हाल लिया और यह कह कर चला आया कि "अच्छा, कोशिश करूंगा और अगर कुछ पता लगा तो खबर दूंगा।"

मुझे शक हो गया था कि कहीं यह बात जर्मनी के खारजा दफ्तर से तो नहीं निकली है। मैंने सोचा कि अगर ऐसा हुआ, तो यह जानने में भी देर न लगेगी कि बोस बाबू काबुल में किसके पास रहे थे।

कुछ दिनों बाद करूनी साहब की बीवी अपने साथ एक जर्मन को लेकर मेरी दूकान पर आई। उसने नए आदमी की बाबत बताया कि वह जर्मन सफारत का एक सफीर है और बोस बाबू को बर्लिन पहुंचाने के बाद यहां आया है। मैंने उससे शिकायत करते हुए कहा कि आपके खारजा दफ्तर से यह खबर फैली है कि बोस बाबू काबुल में मेरे पास रहे। इसके बाद मैंने उसे बाशी साहब का सारा किस्सा कह सुनाया। इस पर उसने कहा कि हमारा दफ्तर इतना कमजोर नहीं है कि वहांसे इस तरह की बातें निकल सकें। फिर, यह बात तो बिल्कुल नामुमकिन है कि अफगानिस्तान

के सफीर को इन बातों का वहांसे कुछ पता लग जाय । इस पर करूनी साहब की बीवी ने कहा कि मुमकिन है कि पेशावर की पुलिस ने रहमतखां की पूछ-ताछ शुरू की हो। मैंने भी उसकी इस राय से इत्तफाक जाहिर किया। बाशी का जिक्र करते हुए मैंने कहा कि इस वेवकूफ की तरफ भी खयाल करो, जो आकर मुझसे ही वोस बाबू के बारे में मालूम करना चाहता है। मेरी इस बात पर वे हंसे और चल दिये।

बोस बाबू के जाने के करीवन तीन महीने बाद उनकी एक चिट्ठी हाजी की बीवी के पास जर्मन सफारत के जरिये आई । वह जर्मन जवान में टाइपशुदा थी। ज्यादातर तो उसमें हाजी की बीवी की बहिन के बारे में ही लिखा था और वास्कट के पहुंचने की इत्तला थी । मेरे लिए ये चंद लफ्ज थे, जिसका तर्जुमा हाजी की बीवी ने इस तरह किया:—

"उत्तमचन्द, नमस्ते ! आपका बहुत ही मशकूर हूं । आपकी इमदाद को मैं जिन्दगी भर कभी नहीं भूल सकता । बाकी काम होशियारी से करते जाना।" —जियाउद्दीन।

जय हिन्द !

आजाद हिन्द जिन्दाबाद !!

वन्दे मातरम् !!!

रावलपिण्डी जेल

इस पुस्तक की विशेषतायें

देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस की कलकत्ता से पेशावर और वहां से काबुल होकर की गई रहस्यपूर्ण यात्रा का यह सही विवरण है।

नेताजी के अज्ञातवास में विताये गये चार-पांच वर्षों के अत्यन्त रहस्यमय पचास दिनों की यह कहानी है।

काबुल में अपने घर में नेताजी को आश्रय देने वाले श्री उत्तमचन्द इसके लेखक हैं।

उनको आश्रय देने के लिए लेखक को काफी आर्थिक हानि सहनी पड़ी और चार वर्षों तक जेल की हवा खानी पड़ी।

चार वर्षों के लम्बे जेल-प्रवास के दिनों में जेल की काल-कोठरी में बैठकर इसको लिखा गया है।

कलकत्ता से पेशावर पहुंचने और इटली वालों से संपर्क स्थापित होने की कहानी नेताजी ने अपने श्रीमुख से स्वयं लेखक को सुनाई है।

यह आत्मकथा सरीखी सुन्दर, नाटक सरीखी रोचक और उपन्यास सरीखी मनोरंजक है। भाषा और शैली में कुछ भी बनावट न होकर वह बिल्कुल सरल और स्वाभाविक है।

इसकी आय का कुछ हिस्सा 'आजाद हिन्द फौज के पैरवी फंड' में और सरहद के 'लालकुर्ती फण्ड' में दिया जा रहा है।

हिन्दी और उर्दू में यह प्रायः एक ही भाषा में (अलग अलग लिपियों में) प्रकाशित हो रही है।

हिन्दुस्तान की प्रायः सभी भाषाओं और अंग्रेजी में भी यह प्रकाशित हो रही है।

हिन्दी की एक उदीयमान प्रकाशन-संस्था

नवयुग-साहित्य सदन, इन्दौर के प्रकाशन

[संग्रहणीय जीवन-प्रेरक और मननीय]